श्रृंगारेतर काल प्रवृत्तियाँ

(नीति काव्य, भक्ति काव्य एवं वीर काव्य)

(Shringaretre Kaal Trends (Moral Poetry, Devotional Poetry and Heroic Poetry))

शिप्रा सिंह

शृंगारेत्तर काल प्रवृत्तियाँ (नीति काव्य, भक्ति काव्य एवं वीर)

श्रृंगारेत्तर काल प्रवृत्तियाँ (नीति काव्य, भक्ति काव्य एवं वीर)

(Shringarareta Kaal Trends (Moral Poetry, Devotional Poetry and Heroic Poetry))

शिप्रा सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5484-0

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

नीति काव्य का उद्‌भव विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से माना गया है। इसके साथ ही बाह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत में धर्म और नीति का सदुपदेश सम्मिलित है। इन नीति ग्रन्थों में तत्त्व ज्ञान और वैराग्य का सुन्दर सन्निवेश है। इनमें प्रायः सभी धार्मिक विश्वासों का उल्लेख और उपदेश है। इन नीति ग्रन्थों में लोक जीवन के व्यवहार में आने वाली बातों पर विचार करने के साथ ही साथ जीवन की असारता का निरूपण कर मानव मात्रा को 'मोक्ष' के साधन का उपदेश भी है। भारतीय नीति के अन्तर्गत धर्म एवं दर्शन भी समाहित हो जाते हैं, इसीलिए नीति काव्य का उद्‌भव स्मृति ग्रन्थों से भी माना जाता है। महाभारत के दो बड़े प्रसगों की श्रीमद्‌भागवद्‌गीता एवं विदुरनीति तो स्वयं ही नीति काव्य के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भगवद्‌गीता तो भारतीय संस्कृति का अनमोल रत्न है, जिसके माध्यम से हमें जीवन की असारता, आत्मा की अमरता, निष्काम कर्मवाद आदि की शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार विदुर नीति में भी कुल धर्म, सर्व धर्म, राज धर्म, विश्व धर्म व आत्म धर्म के विविध स्वरूपों को देखा जा सकता है।

भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के मध्यकाल की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता को भक्ति आन्दोलन के रूप में पहचाना जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में यह भक्ति काव्य के विराट रस श्रोत के रूप में प्रकट हुआ।

भक्ति काव्य का स्वरूप अखिल भारतीय था। दक्षिण भारत में दार्शनिक सिद्धांतों के ठोस आधार से समृद्ध होकर भक्ति उत्तर भारत में एक आंदोलन के रूप में फैल गयी। इसका प्रभाव कला, लोक व्यवहार आदि जीवन के समस्त क्षेत्रों पर पड़ा। कबीर, जायसी, मीरा, सूर, तुलसी आदि कवियों के साथ रामानंद, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य आदि आचार्यों के सिद्धांतों में भक्ति के इसी स्वरूप के दर्शन होते हैं।

रीतिकाल में वीर काव्य धारा के दर्शन भी होते हैं। वीर रस की फुटकर रचनाएँ निरंतर रची जाती रही। जिनमें युद्धवीरता और दानवीरता दोनों की बड़ी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी। भूषण इस काव्य-प्रवृत्ति के प्रमुख कवि हैं। भूषण का काव्य युग की प्रेरणा की उपज कहा जा सकता है। अपने युग के जिस आदर्श नायक शिवाजी का भूषण ने अपने काव्य में चित्रण किया है, वह उनकी अपनी मनोभावनाओं का साकार रूप है, किसी सामंत की प्रतिमूर्ति नहीं। भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल को काव्य-नायक बनाकर उनके वीर कृत्यों का ओजस्वी भाषा में चित्रण किया है। भूषण के अतिरिक्त लाल, सूदन, पद्माकर, सेनापति, चंद्रशेखर, जोधराज, भान और सदानंद आदि कवियों ने भी वीर-काव्य की रचनाएँ की हैं

भूषण (1613-1705) रीतिकाल के तीन प्रमुख कवियों में से एक हैं, अन्य दो कवि हैं बिहारी तथा केशव। रीति काल में जब सब कवि शृंगार रस में रचना कर रहे थे, वीर रस में प्रमुखता से रचना कर भूषण ने अपने को सबसे अलग साबित किया। 'भूषण' की उपाधि उन्हें चित्रकूट के राजा रूद्रसाह के पुत्र हृदयराम ने प्रदान की थी। ये मोरंग, कुमायूँ, श्रीनगर, जयपुर, जोधपुर, रीवाँ, शिवाजी और छत्रसाल आदि के आश्रय में रहे, परन्तु इनके पसंदीदा नरेश शिवाजी और बुंदेला थे। कवि भूषण का परिवार आज कानपुर नगर के सजेती कस्बा में रहता है। कवि भूषण तिवारी खानदान के थे जिनके वंशज शिवमोहन तिवारी आज सजेती कस्बा में रहते हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखिका

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**रीति काल**	**1**
	परिचय	3
	रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्ति	5
	रीतिकाल की विशेषताएँ	9
2.	**काव्य**	**16**
	काव्य का प्रयोजन	18
	काव्य परिभाषा	19
	काव्य के भेद	19
	काव्य का इतिहास	21
	पद्य काव्य के भेद	22
	महाकाव्य के लक्षण	24
	कथानक	24
	महाकाव्य के मूल तत्त्व	27
	खण्ड काव्य का स्वरुप	32
3.	**नीति काव्य**	**40**
	भारतीय साहित्य में नीति काव्य का उद्‌भव	40
	नीतिकाव्य का विकास	41

लघु चाणक्य 42
चाणक्य राजनीति शास्त्र 42
नीतिद्विषष्ठिका 43
नीति शतक 43
वैराग्य शतक 44
सुभाषित नीवी 47
कलि विडम्बन 48
सभारजनशतक 49
शान्ति विलास 49
वैराग्य शतक 49
उपदेश शतक 49
सुभाषित कौस्तुभ 49
लोकोक्ति मुक्तावली 49
रहीम के नीति काव्य की प्रासंगिकता 50
4. भक्ति काव्य 55
भक्ति काव्य का स्वरूप 55
भक्ति काव्य के भेद 55
भक्ति काल 56
संत शिरोमणि रविदास 68
रविदास जी के पद 69
सूरदास मदनमोहन 76
कृतियाँ 77
चैतन्य महाप्रभु 78
जीवन परिचय 80
सूरदास बनना 80
गदाधर भट्ट 87
माधुर्य भक्ति का वर्णन 89
बचपन 93
जुलाहा 93
शिक्षा 94
गुरु दीक्षा 95

कबीरदास का भक्त रूप 101
कृतियां 102
कबीर रचनावली 123
भक्ति काव्य का सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यांकन 128
5. रीतिकालीन वीर काव्य के कवि और उनकी रचनाएँ 144
जीवन परिचय 145
काव्यगत विशेषताएँ 146
भूषण की राष्ट्रीय चेतना 152
साहित्य में स्थान 153
शिवराज भूषण 154
शिवा बावनी 156
सेनापति (कवि) 157
6. रीति काल 160
बिहारी लाल 160
जीवन परिचय 160
टीकाएँ 163
काव्यगत विशेषताएँ 164
भक्ति-भावना 165
प्रकृति-चित्रण 165

1

रीति काल

सन् 1700 ई.(1757 विक्रमी संवत) के आस-पास हिंदी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषत: तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत साहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिंदी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजन प्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रंथों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को 'रीतिकाव्य' कहा गया। इस काव्य कीशृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

इस काल में कई कवि ऐसे हुए हैं, जो आचार्य भी थे और जिन्होंने विविध काव्यांगों के लक्षण देने वाले ग्रंथ भी लिखे। इस युग में शृंगार की प्रधानता रही। यह युग मुक्तक-रचना का युग रहा। मुख्यतया कवित्त, सवैये और दोहे इस युग में लिखे गए।

राजा-महाराजा और आश्रयदाता अब केवल काव्यों को पढ़ और सुनकर ही संतुष्ट नहीं होते थे, बल्कि अब वह स्वयं काव्य रचना करना चाहते थे। इस समय पर कवियों ने आचार्य का कर्तव्य निभाया। कवि राजाश्रित होते थे इसलिए इस युग की कविता अधिकतर दरबारी रही जिसके फलस्वरूप इसमें

चमत्कारपूर्ण व्यंजना की विशेष मात्राा तो मिलती है परंतु कविता साधारण जनता से विमुख भी हो गई। रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी थे। केशवदास (ओरछा), प्रताप सिंह (चरखारी), बिहारी (जयपुर, आमेर), मतिराम (बूँदी), भूषण (पन्ना), चिंतामणि (नागपुर), देव (पिहानी), भिखारीदास (प्रतापगढ़-अवध), रधुनाथ (काशी), बेनी (किशनगढ़), गंग (दिल्ली), टीकाराम (बड़ौदा), ग्वाल (पंजाब), चन्द्रशेखर बाजपेई (पटियाला), हरनाम (कपूरथला), कुलपति मिश्र (जयपुर), नेवाज (पन्ना), सुरति मिश्र (दिल्ली), कवीन्द्र उदयनाथ (अमेठी), ऋषिनाथ (काशी), रतन कवि (श्रीनगर-गढ़वाल), बेनी बन्दीजन (अवध), बेनी प्रवीन (लखनऊ), ब्रह्मदत्त (काशी), ठाकुर बुन्देलखण्डी (जैतपुर), बोधा (पन्ना), गुमान मिश्र (पिहानी) आदि और अनेक कवि तो राजा ही थे, जैसे- महाराज जसवन्त सिंह (तिर्वा), भगवन्त राय खीची, भूपति, रसनिधि (दतिया के जमींदार), महाराज विश्वनाथ, द्विजदेव (महाराज मानसिंह)।

रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। कविप्रिया में अलंकार और रसिकप्रिया में रस का सोदाहरण निरूपण है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्तसवैए में हैं। लक्षण-लक्ष्य-ग्रंथों की यही परंपरा रीतिकाव्य में विकसित हुई। रामचंद्रिका केशव का प्रबंधकाव्य है जिसमें भक्ति की तन्मयता के स्थान पर एक सजग कलाकार की प्रखर कलाचेतना प्रस्फुटित हुई। केशव के कई दशक बाद चिंतामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिंदी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाव्य का शुरूआत केशवदास से न मानकर चिन्तामणि से माना है। उनका कहना है कि - ' केशवदास जी ने काव्य के सब अंगो का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया यह नि:सन्देह है कि काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्च केशव ने ही किया हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया ' के प्राय:पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर केशव के आदर्श को लेकर नही' वे कहते है कि- 'हिन्दी रीतिग्रन्थो की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि से चली, अत:रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए।

परिचय

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्रय समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतरश्रृंगारमूलक और कलावैचित्रय से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्राा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्य साहित्य महत्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में जो विक्षोभ की स्थितियाँ आई उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय की श्रृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा श्रृंगारकाव्य की है, जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है। श्रृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्रा इनमें अधिक है। पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिंदी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्यरचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओंवाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यत: मांसल शृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के रमणीय पक्षों का सुंदर उद्‌घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगारकाव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

इतिहास साक्षी है कि अपने पराभव काल में भी यह युग वैभव विकास का था। मुगल दरबार के हरम में पाँच-पाँच हजार रूपसियाँ रहती थीं। मीना बाजार लगते थे, सुरा-सुन्दरी का उन्मुक्त व्यापार होता था। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- 'वासना का सागर ऐसे प्रबल वेग से उमड़ रहा था कि शुद्धिवाद सम्राट के सभी निषेध प्रयत्न उसमें बह गये। अमीर-उमराव ने उसके निषेध पत्रों को शराब की सुराही में गर्क कर दिया। विलास के अन्य साधन भी प्रचुर मात्राा में थे।' पद्‌माकर ने एक ही छन्द में तत्कालीन दरबारों की रूपरेखा का अंकन कर दिया है-

गुलगुली गिल में गलीचा हैं, गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक है चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्‌माकर त्यौं गजक गिजा है सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं।
सिसिर के पाला को व्यापत न कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन ऐते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला हैं, दुसाला हैं विसाला चित्रसाला हैं।

ऐहलौकिकता,शृंगारिकता, नायिकाभेद और अलंकार-प्रियता इस युग की प्रमुख विशेषताएं हैं। प्राय: सब कवियों ने ब्रज-भाषा को अपनाया है। स्वतंत्र कविता कम लिखी गई, रस, अलंकार वगैरह काव्यांगों के लक्षण लिखते समय उदाहरण के रूप में - विशेषकरशृंगार के आलंबनों एवं उद्दीपनों के उदाहरण के रूप में - सरस रचनाएं इस युग में लिखी गईं। भूषण कवि ने वीर रस की रचनाएं भी दीं। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष अधिक समृद्ध रहा। शब्द-शक्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, न नाटयशास्त्र का विवेचन किया गया। विषयों का संकोच हो गया और मौलिकता का ह्रास होने लगा। इस समय अनेक कवि हुए केशव, चिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, घनानंद, पद्‌माकर आदि। इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता

है। बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया। आपको रीति-काल का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

इस काल के कवियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

1. रीतिबद्ध कवि
2. रीतिमुक्त कवि
3. रीतिसिद्ध कवि

विद्वानों का यह भी मत हैं कि इस काल के कवियों ने काव्य में मर्यादा का पूर्ण पालन किया है। घोरशृंगारी कविता होने पर भी कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन देखने को नहीं मिलता है।

रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्ति

भक्ति औरशृंगार की विभाजक रेखा सूक्ष्म है। भक्ति की अनुभूति को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र एवं दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया कबीर जैसे बीहड़ कवि भी भाव-विभोर हो कह उठते हैं- "हरि मोरा पिउ मैं हरि की बहुरिया". मर्यादावादी तुलसी भी निकटता को व्यक्त करने के लिए "कामिनि नारि पिआरि जिमि" जैसी उपमा देते हैं। कालांतर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप से हट गए और वे महज दांपत्य जीवन के प्रतीक बन कर रह गए. प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई और प्रेम श्रृंगारिक रूप में केन्द्र में आ गया. भक्ति काल का रीतिकाल में रूपांतरण की यही प्रक्रिया है।

रीतिकालीन काव्य की मूल प्रेरणा ऐहिक है। भक्तिकाल की ईश्वर-केन्द्रित दृष्टि के सामने इस मानव केन्द्रित दृष्टि की मौलिकता एवं साहसिकता समझ में आती है। आदिकालीन कवि अपने नायक को ईश्वर के जैसा महिमावान अंकित किया था। भक्त कवियों ने ईश्वर की नर लीला का चित्रण किया तो रीतिकालीन कवियों ने ईश्वर एवं मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण किया भक्त कवि तुलसीदास लिखते हैं-

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ
मति अनुरूप राम गुन गाउँ.

परन्तु भिखारीदास का कहना है-

आगे की कवि रीझिहैं तौ कविताई, न तौ
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो हैं।

एक के लिए भक्ति प्रधान है, इस प्रक्रिया में कविता भी बन जाए तो अच्छा है। कवि तो राम का गुण-गान करता है। वहीं दूसरे के लिए कविता की रचना महत्त्वपूर्ण है। यदि कविता न बन सके तो उसे राधा-कृष्ण का स्मरण मान लिया जाए।

सम्पूर्ण रीति साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त वास्तव में रीतिबद्ध कवि रीतिसिद्ध भी थे और रीतिसिद्ध कवि रीतिबद्ध भी इस युग के राजाश्रित कवियों में से अधिकांश तथा जनकवियों में से कतिपय ऐसे थे जिन्होंने आत्मप्रदर्शन की भावना या काव्य-रसिक समुदाय को काव्यांगों का सामान्य ज्ञान कराने के लिए रीतिग्रंथों का प्रणयन किया अत: इनकी सबसे प्रमुख विशेषता व प्रवृत्ति रीति-निरूपण की ही थी. इसके साथ ही आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए श्रृंगारिक रचनाएँ भी की अत:श्रृंगारिकता भी इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी. इधर आश्रयदाता राजाओं के दान, पराक्रम आदि को आलंकारिक करने से उन्हें धन-सम्मान मिलता था। वहीं धार्मिक संस्कारों के कारण भक्तिपरक रचनाएँ करने से आत्म लाभ होता था। इस प्रकार राज-प्रशस्ति एवं भक्ति भी इनकी प्रवृत्तियों के रूप में परिगणित होती है। दूसरी ओर इन कवियों ने अपने कटु-मधुर व्यक्तिगत अनुभवों को भी समय-समय पर नीतिपरक अभिव्यक्ति प्रदान किया अत: नीति इनकी कविता का अंग कही जा सकती है।

डॉ. नगेन्द्र ने रीति-कवियों की प्रवृत्तियों को दो वर्गों में रखा है–

क. मुख्य प्रवृत्ति

ख. गौण प्रवृत्ति

मुख्य प्रवृत्तियों को दो वर्गों में विभाजित किया है–

1. रीति-निरूपण
2. श्रृंगारिकता

और गौण प्रवृत्तियों को तीन भागों में बांटा है–

1. राजप्रशस्ति या वीर काव्य
2. भक्ति
3. नीति

रीति-निरूपणरू

रीतिकालीन कवियों के रीति-निरूपण की शैलियों का अध्ययन करने पर तीन दृष्टियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रथम दृष्टि तो मात्राा रीति-कर्म की है। इनमें वे ग्रंथ आते हैं जिनमें सामान्य रूप से काव्यांग-विशेष का परिचय कराना ही कवि का उद्देश्य है अपने कवित्व का परिचय देना नहीं ऐसे ग्रंथों में लक्षण के साथ उदाहरण या तो अन्य रचनाकारों के काव्य से दिया गया है या इतना संक्षिप्त है कि कवित्व जैसी कोई बात ही नहीं है। राजा जसवंत सिंह का 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', रसिक सुमति का 'अलंकार चंद्रोदय', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इसी प्रवृत्ति के परिचायक ग्रंथ हैं।

द्वितीय प्रवृत्ति में रीति-कर्म और कवि-कर्म का समान महत्त्व रहा है। इसके अंतर्गत लक्षण एवं उदाहरण दोनों उनके रचयिताओं द्वारा रचित है तथा उदाहरण में सरसता का पुट मिला हुआ है। देव, मतिराम, केशव, पद्माकर, कुलपति, भूषण आदि के ग्रंथ इसी श्रेणी में आते हैं।

तीसरी प्रवृत्ति के अंतर्गत लक्षणों को महत्त्व नहीं दिया गया है। कवियों ने प्राय: सभी छंदों की रचना काव्यशास्त्र के नियमों से बद्ध होकर ही किया है, लेकिन लक्षणों को त्याग दिया है। बिहारी, मतिराम आदि की सतसइयाँ, नख-सिख वर्णन संबंधी समस्त ग्रंथ इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

काव्यांग-विवेचन के आधार पर इसकी दो अंत: प्रवृत्तियाँ ठहरती हैं।

1. सर्वांग विवेचन
2. विशिष्टांग विवेचन

सर्वांग विवेचन प्रवृत्ति के अंतर्गत आनेवाले ग्रंथों में कवियों ने सामान्यत: काव्य-हेतु, काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, काव्यशक्ति, काव्य-रीति, अलंकार, छंद आदि का निरूपण किया है। चिंतामणि का 'कविकुलकल्पतरू', देव का 'शब्दरसायन', कुलपति का 'रसरहस्य', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' आदि इसी प्रवृत्ति के ग्रंथ हैं।

विशिष्टांग विवेचन की प्रवृत्ति के अंतर्गत वे ग्रंथ आते हैं जिनमें किसी एक या दो या तीन का विवेचन किया गया है। ये विषय हैं– रस, छंद और अलंकार. इनमें रस-निरूपण की प्रवृत्ति इन कवियों में सर्वाधिक देखने को मिलती है।शृंगार को रसराज के रूप में निरूपित करने का भाव सर्वाधिक है।

विवेचन-शैली के आधार पर इस काल में रीति-निरूपण की मुख्य तीन शैलियां प्रचलित हैं।

प्रथम 'काव्यप्रकाश'-'साहित्यदर्पण' की शैली है। इसके अंतर्गत चिंतामणि के 'कविकुलकल्पतरू', देव का 'शब्दरसायन', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय'

आदि को रखा जाता है। इसमें मम्मट-विश्वनाथ द्वारा दी गई संस्कृत-गद्य की वृत्ति के समान ब्रजभाषा गद्य की वृत्ति देकर विषय को समझाया गया है।

दूसरी शैली 'चन्द्रालोक'-'कुवलयानंद' की संक्षिप्त शैली है। जसवंत सिंह की 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', पद्माकर का 'पद्माभरण', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इस शैली के ग्रंथ हैं।

तीसरी शैली भानुदत्त की 'रसमंजरी' की है। इसमें लक्षण एवं सरस उदाहरण देकर विषय-निरूपण किया गया है।

शृंगारिकता

शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों का प्राण है। एक ओर काव्यशास्त्रीय बंधनों का निर्वाह और दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट तथा विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण इस प्रवृत्ति ने जो स्वरूप ग्रहण किया, उसे दूसरे कवियों कीशृंगारिकता से पृथक करके देखा जा सकता है।

शास्त्रीय बंधनों ने इतना रूढ़ बना दिया है किशृंगार के विभाव पक्ष में नायक-नायिका के भेद तथा उद्दीपक सामग्री के प्रत्येक अंग, अनुभवों के विविध रूप, वियोग के भेदोपभेद-सहित विभिन्न कामदशाओं संबंधी रचनाओं के अलग-अलग वर्ग बनाये जा सकते हैं।

दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट एवं आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण ये कवि अपनी कल्पना के पंख इतने फैला सके हैं कि शास्त्रीय घेरे के भीतर निर्माताओं की अभिरूचि एंव दृष्टि की व्यंजना उनकी इस प्रवृत्ति की विशेषता प्रकट हो जाती है। इन कवियों कीशृंगार भावना में दमन से उत्पन्न किसी प्रकार की कुंठा न होकर शरीर-सुख की वह साधना है जिसमें विलास के सभी उपकरणों के संग्रह की ओर व्यक्ति की दृष्टि केन्द्रित होती है। इनके प्रेम-भावना में एकोन्मुखता का स्थान अनेकोन्मुखता ने इस प्रकार ले लिया है कि कुंठारहित प्रेम की उन्मुक्तता व रसिकता का रूप धारण कर गई है। यही कारण है कि उनके पत्नियों के बीच अकेला नायक किसी मानसिक तनाव का शिकार नहीं होता बल्कि निर्द्वन्द्व होकर भोगने में ही जीवन की सार्थकता समझता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रीतिकवियों कीशृंगारिकता में सामान्य रूप से कुंठाहीनता, शारीरिक सुख की साधना, अनेकोन्मुख प्रेमजन्य रूपलिप्सा, भोगेच्छा, नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण आदि शास्त्रीय बंधनों में बँधकर भी पाठकों को आत्मविभोर कर सकती हैं।

राजप्रशस्ति

यह प्रवृत्ति आश्रयदाताओं की दान-वीरता और युद्धवीरता के वर्णन में दृष्टिगोचर होती है। इनकी अभिव्यक्ति में सामान्य रूप से दान की सामग्री की प्रचुरता और आश्रयदाताओं के आतंक के प्रभाव के वर्णनों के कारण वैसा रसात्मक प्रभाव नहीं डाल पाती. यह राजाओं की झूठी प्रशस्ति का ही प्रभाव छोड़ता है। इनमें उत्साह का अभाव ही रहा है।

भक्ति

भक्ति की प्रवृत्ति ग्रंथों के मंगलाचरणों, ग्रंथों की समाप्ति पर आशीर्वचनों, भक्ति एवं शांत रस के उदाहरणों में मिलती है। ये कवि राम-कृष्ण के साथ गणेश, शिव और शक्ति में समान श्रद्धा व्यक्त करते पाये जाते हैं। अत: यह माना जा सकता है कि किसी विशेष सम्प्रदाय के अनुयायी होते हुए भी धार्मिक कट्टरता नहीं थी. वास्तव में उय समय भक्ति धार्मिकता का परिचायक नहीं थी बल्कि विलास से जर्जर दरबारी वातावरण से बाहर आकुल मन की शरणभूमि थी।

नीति

भक्ति इनके आकुल मन शरणस्थली थी तो नीति-निरूपण दरबारी जीवन के घात-प्रतिघात से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विरेचन के लिए शाँति का आधार. यही कारण है कि आत्मोपदेशों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्राय: देखने को मिल जाती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गौण-प्रवृत्तियों में राज प्रशस्ति की प्रवृत्ति,श्रृंगारी प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन में 'प्रवृत्ति' की परिचायक है, जबकि भक्ति एंव नीति ने उससे निवृत्ति की.

रीतिकाल की विशेषताएँ

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल रीतिकाल के नाम से पुकारा जाता है, इस समय के शासक साहित्य प्रेम, काव्य प्रेम तथा मनोरंजन के लिए कवियों को आश्रय देने लगे थे . कवियों का मुख्य ध्येय आश्रयदाताओं का मनोरंजन हो गया था .क्योंकि कवि चाँदी के चंद टुकड़ों पर अपनी कला को राजदरबारों में गिरवी रख चुका था इस काल के कवियों में स्वतंत्र सुख और परहित का अभाव

थ। राम और कृष्ण की प्रेम लीलाओं की ओट में कविगणशृंगार वर्णन, ऋतु वर्णन, नख शिख वर्णन आदि पर कविता लिखकर आचार्यत्व और पांडित्यपूर्ण की होड़ में लगे हुए थे कवियों ने कलापक्ष में ही कुछ अधिक चमत्कार और नवीनता लाने का प्रयास किया रीति का अर्थ शैली है चूँकि इन कवियों ने काव्य शैली की इस विशिष्ट पद्धति का विकास किया इसीलिए इस काल को रीतिकाल कहा जाता हैं। इस काल में अलंकार, रस, नायिका भेद, नख शिख वर्णन छंद आदि काव्यांगों पर प्रचुर रचना हुई है।

रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है –

1. लौकिक शृंगारिकता–इस काल के कवियों का मुख्य काव्य रस शृंगार रस है। नायिकाओं का नख शिख वर्णन और कटाक्ष वर्णन ही इनका लक्ष्य रहा है। इसी कारण इस काव्य का वर्णन विषयक अधिक विस्तार नहीं पा सका है। नारी को केवल भोग्या के रूप में देखा गया वह न किसी की पुत्री थी न किसी की माता।

2. नायिका भेद–इन कवियों की लेखनी से नायिका भेद सुन्दर वर्णन प्रकाश में आया है . भेद वर्णन अत्यधिक उत्तेजक और कामुक भी है।

3. लक्षण ग्रंथों का निर्माण–इन काल के कवियों को लक्षण ग्रन्थ लिख कर आचार्य का भी कार्य करना पड़ा। किन्तु दोनों कार्यों में एक भी कार्य अच्छी तरह नहीं संपन्न हो सका .इस काल के कुछ कवियों ने लक्षण लिखकर स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत किये .इनमें भूषण, देव आदि मुख्य हैं। दूसरे प्रकार के कवियों में बिहारी प्रमुख हैं जिन्होंने केवल उदाहरण प्रस्तुत किये।

4. अलंकारिकता–इस काल के कवियों को अलंकार प्रिय थे। वे मानते थे – भूषण बिना न सोई, कविता वनिता मित। इस दृष्टि से इन कवियों ने अपनी कविता कामिनी को अलंकर से खूब सजाया है।

5. ब्रज भाषा–इस काल की साहित्यिक भाषा है, जो कोमलता और मधुरता की दृष्टि से सर्वोपरि है। इसी कारण मुसलमान कवियों ने भी इसी भाषा को स्वीकार किया है।

6. मुक्तक कवि–रीति काल में प्रबंध काव्य लिखने का प्रचलन नहीं रह गया है। सभी कवियों ने मुक्तक काव्य शैली को अपनाया है। शृंगार वर्णन के लिए यह शैली सर्वाधिक उपयुक्त है। इन कवियों ने दोहा, सोरठा, कविता में अपनी भावनाओं का प्रकाशन किया है। साथ की रीतिकालीन साहित्य में भाव पक्ष की तुलना में काला पक्ष की प्रधानता है। वे अपनी रचनाओं में काव्य के

काला पक्ष के इतने आग्रही हो गए थे कि भाव पक्ष की ओर उतना ध्यान ही नहीं गया। कला पक्ष को सबल बनाने के लिए इन कवियों ने चित्र योजना, अलंकार योजना, नाद योजना तथा छंद योजना को महत्व दिया।

7. वीररस का प्रवाह–आदिकाल की वीर धारा जो भक्तिकाल में समाप्त हो गयी थी, रीतिकाल में पुनः उसका उत्थान हुआ। भूषण जैसे कवियों ने वीर धारा को राष्ट्रीयता की ओर मोड़ दिया है। ऐसे एतिहासिक पुरुषों को चारित्रिक बनाया गया है जिन पर हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा का भार था।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रीतिकाल की श्रृंगारिकता और विलास की प्रवृति जनता के समक्ष कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सकी .भाव पक्ष की दृष्टि से यह काव्य अधिक समृद्ध है। डॉ.भागीरथ मिश्र के शब्दों में - इस धारा के कवि ने जीवन के लिए अदम्य वासना जागृत कर दी है, सौंदर्यानुभुति और सुरुचि की सुकुमार कसौटी प्रदान की है।

रीतिकालीन काव्य की रचना सामंती परिवेश और छत्रछाया में हुई है इसलिए इसमें वे सारी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो किसी भी सामंती और दरबारी साहित्य में हो सकती हैं। इस प्रकार रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1. रीति निरूपणलक्षण ग्रंथों की प्रधानता
2. श्रृंगारिकता
3. आलंकारिकता
4. आश्रयदाताओं की प्रशंसाराजप्रशस्ति
5. चमत्कार प्रदर्शन एवं बहुज्ञता
6. उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण
7. ब्रज भाषा की प्रधानता
8. भक्ति और नीति
9. मुक्तक शैली की प्रधानता
10. संकुचित जीवन दृष्टि
11. नारी के प्रति कामुक दृष्टिकोण
12. स्थूल एवं मांसल सौंदर्य का अंकन

लक्षण ग्रंथों की प्रधानता

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति रीति निरूपण या लक्षण-ग्रंथों का निर्माण है। इन कवियों ने संस्कृत के आचार्यों का अनुकरण पर लक्षण-ग्रंथों अथवा रीति

ग्रंथों का निर्माण किया है। फिर भी इन्हें रीति निरूपण में विशेष सफलता नहीं मिली है। इनके ग्रंथ एक तरह से संस्कृत-ग्रंथों में दिए गए नियमों और तत्त्वों का हिंदी पद्य में अनुवाद हैं। जिसमें मौलिकता और स्पष्टता का अभाव है। इन कवियों ने कवि कर्म की अपेक्षा कवि शिक्षक की भूमिका अधिक नजर आते है। रीति निरूपण करने वाले आचार्यों के दो भेद हैं- सर्वांग और विशिष्टांग निरूपक।

काव्यांग परिचायक कवियों का उद्देश्य काव्यांगों का परिचय देना है। इन्होंने लक्षण ग्रंथों के साथ अन्य कवियों की कविताओं का उदाहरण प्रस्तुत किया हैं। वहीं रीति निरूपण एवं काव्य रचना को बराबर महत्व देने वाले कवियों के ग्रंथों में लक्षण और उदाहरण, दोनों उन्हीं के द्वारा रचित है। इनके अलावा तीसरा वर्ग उन कवियों का है जिनमें रीति तत्त्व तो उनके ग्रंथों में मिलता है परंतु काव्यांगों का लक्षण उन्होंने नहीं दिया है।

शृंगारिकता

रीतिकाल की दूसरी बड़ी विशेषताशृंगार रस की प्रधानता है। इस काल की कविता में नखशिख और राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का चित्रण व्यापक स्तर पर हुआ है। दरबारी परिवेश के फलस्वरूप नारी केवल पुरुष के रतिभाव का आलम्बन बनकर रह गई।शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन इस युग की कविताओं में हुआ है।शृंगार में आलंबन और उद्दीपन के बड़े ही सरस उदाहरणों का निर्माण हुआ है। संयोग चित्रण में कहीं-कहीं रति चित्रण की वजह से अश्लीलता भी दिखाई देती है, वहीं वियोग वर्णन में कवि-कर्म ऊहात्मक और खिलवाड़ बन कर रह गया है। भागीरथी मिश्र ने इन कवियों के बारे में लिखा है कि, 'उनका दृष्टिकोण मुख्यत: भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे नहीं जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपस्या आदि उदात्त पक्ष उनकी दृष्टि में बहुत कम आयें हैं।'

रीतिबद्ध कवियों के प्रेम चित्रण में जहाँ रसिकता और कामुकता दिखाई देती है वहीं दूसरी तरफ रीतिमुक्त कवियों के यहाँ प्रेम चित्रण में स्वच्छंदता, उदात्तता एवं अकृत्रिमता दिखाई देती है। रीतिमुक्त कवियों के यहाँ विरह वर्णन की प्रधानता है परंतु विरह ताप की अतिशयता एवं विरहजन्य उहात्मकता नहीं दिखाई पड़ती।

अलंकारिकता

रीति काल की एक अन्य प्रधान प्रवृत्ति अलंकारिकता भी है। इसका कारण राजदरबारों का विलासी वातावरण तथा ये कवि कविता को अलंकारों से सजाने को अपनी सार्थकता भी समझते थे। इस युग के कवियों ने सभी अलंकारों का निरूपण अपनी कविताओं में किया है। यहाँ कविता साधन न होकर साध्य है। अधिकतर कवियों ने अलंकारों के लक्षण उदाहरण दिए, लेकिन बहुतों ने केवल उदाहरण ही लिखे, जबकि उनके मन में लक्षण विद्यमान थे। इस युग में अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि वह साधन न रहकर साध्य हो गया। कभी-कभी केवल अलंकार ही अलंकार स्पष्ट होते हैं और कवि का अभिप्रेत इस अलंकार प्रेम की वजह से इस दौड़ की कविताएँ विकृति भी हो गया है। यह दोष रीति कालीन कविता में प्रायः दिखाई पड़ता है। केशव को इसी कारण शुक्ल जी ने कठिन काव्य का प्रेत कहा है। केशवदास अलंकार विहीन कविता को काव्य मानते ही नहीं, भले ही उसमें अन्य कितने ही गुण विद्यमान हों।

आश्रयदाताओं की प्रशंसा राजप्रशस्ति

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी कवि थे, राजाओं के आश्रय में रहते थे, इसलिए इन आश्रयदाताओं का गुणगान करना इनकी मजबूरी भी थी। परिणाम स्वरूप इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से किया है, भूषण जैसे कुछ कवि अपवाद हैं। रीतिमुक्त कवियों ने आत्माभिव्यक्ति को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है।

चमत्कार प्रदर्शन एवं बहुज्ञता

इस युग के कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के साथ बहुज्ञता का भी प्रदर्शन अपने ग्रंथों में किया है। चमत्कार प्रदर्शन के अंतर्गत विभिन्न अलंकारों के प्रयोग के साथ शब्दों की पच्चीकारी एवं रमणीयता पर ज्यादा ध्यान दिया गया है, वहीं बहुज्ञता को प्रदर्शित करने के लिए साहित्येतर विषयों- ज्योतिष, गणित, काव्य एवं नीतिशास्त्र आयुर्वेद जैसे विषयों को भी अपने काव्य का माध्यम बनाया है।

उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण

रीतिकाल में प्रकृति-चित्रण प्रायः उद्दीपन रूप में हुआ है। प्रकृत का स्वतंत्र और आलम्बन रूप में चित्रण बहुत कम हुआ है। दरबारी कवि जिसका

आकर्षण केन्द्र नारी थी इसलिए इन कवियों का ध्यान प्रकृति के स्वतंत्र रूप की ओर नहीं गया है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण भी परम्परागत है। नायक-नायिका की मानसिक दशा के अनुरूप प्रकृति भी संयोग में सुखद एवं वियोग में दुखद रूप में चित्रित हुई है। सेनापति और पद्माकर जैसे कवि इसके अपवाद हैं, क्योंकि सेनापति और पद्माकर के यहाँ वर्षा एवं वसंत ऋतु का आकर्षक वर्णन हुआ है।

ब्रजभाषा की प्रधानता

रीति काल ब्रजभाषा का स्वर्ण युग रहा है क्योंकि जहाँ भक्तिकाल में यह भाषा कृष्ण भक्ति कवियों तक सीमित थी वहीं इस काल तक आते-आते पूर्ण रूप से काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। इसके बाद ब्रज भाषों लगभग 200 वर्षों तक हिंदी कविता पर छाई रही। ब्रज भाषा के प्रभाव का अंदाजा आप इस तरह लगा सकते हैं कि इसमें ब्रज के बाहर के कवियों ने भी इसी को अपनी काव्य भाषा बनाया। इस युग की कविताओं में आप फारसी के प्रभाव को भी देख सकते हैं, इसकी वजह उस समय के दरबारी जीवन और सत्ता पर मुसलमान शासकों के आसीन होना प्रमुख वजह है।

भक्ति और नीति

रीतिकाल में भले ही रीति निरूपण,शृंगार और अलंकार की प्रधानता हो, व्यापक मात्रा में भक्ति और नीति से संबंधित पद भी मिल जाते हैं, जो इस युग की एक नई देन है। राधा-कृष्ण लीलाओं में शृंगारिकता के साथ भक्ति भावना भी विद्यमान है। नगेंद्र ने भी लिखा है कि, 'रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है- हो भी नहीं सकता था।' दरबारी वातावरण के परिणाम स्वरूप इनके कविताओं में नीति संबंधी उक्तियाँ भी मिल जाती है। इस क्षेत्र में वृन्द के नीति दोहे, गिरधर की कुंडलियाँ तथा दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

मुक्तक शैली की प्रधानता

रीति काल में कुछ प्रबंध काव्य जरूर लिखे गये हैं परंतु मुक्तक-काव्य रूप को प्रधानता मिली है। दरबारी वातावरण में मुक्तक रचनाएँ ही ज्यादा उपयुक्त थीं, क्योंकि राजाओं-सामंतों के पास प्रबंध काव्य को सुनने का न तो

समय था न ही धैर्य। अत: इस काल में मुक्तकों (कवित्त और सवैयों) की प्रधानता रही। कवित्त में वीर औरश्रृंगार रसों का प्रयोग तथा सवैयों मेंश्रृंगार रस का प्रयोग हुआ है। बिहारी जैसे कवियों ने दोहा छंद के सीमित शब्दों में अधिक अर्थ व्यक्त करने की कला को विकसित किया।

संकुचित जीवन दृष्टि

रीति काल के कवियों की कविताओं में कोई महान या उच्च उद्देश्य नहीं दिखाई देता है। अधिकतर कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए श्रृंगार और मनोरंजन पूर्ण काव्य की रचना की। रीति कालीन कवियों के यहाँ उत्तम काव्य रचना के लिए जीवन के प्रति जिस व्यापक दृष्टिकोण की अपेक्षा की जाती है उसका नितांत अभाव दिखाई देता है। दरबारी परिवेश और विलासिता पूर्ण जीवन की वजह से इनका दृष्टि इतना संकुचित हो गया कि जीवन के विविध पहलू छूट गये।

नारी के प्रति कामुक दृष्टिकोण

रीतिकालीन कवियों के यहाँ नायिका के नख-शिख वर्णन व्यापक पैमाने पर हुआ है। नारी के वाह्य रूप, स्थूल एवं मांसल चित्रण में उनकी वृत्ति अधिक रमी है। यह परिवेश ही ऐसा था जहाँ स्त्री को भोग-विलास की वस्तु समझा जाता था, कामुक दृष्टि से देखा जाता था। इसीलिए स्त्रियों के दूसरे महत्वपूर्ण पहलू छूट गये हैं और इन कवियों कि दृष्टि एकांगी हो गया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, 'यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बंधन से यथासंभव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्राा है।'

स्थूल एवं मांसल सौंदर्य का अंकन

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के यहाँ स्थूल एवं मांसल सौंदर्य का वर्णन हुआ है, लेकिन रीतिमुक्त कवियों के यहाँ सौंदर्य का सूक्ष्म एवं मनोरम वर्णन दिखाई पड़ता है।

2

काव्य

काव्य, कविता या पद्य, साहित्य की वह विधा है जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भारत में कविता का इतिहास और कविता का दर्शन बहुत पुराना है। इसका प्रारंभ भरतमुनि से समझा जा सकता है। कविता का शाब्दिक अर्थ है काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों कीशृंखलाओं में विधिवत बांधी जाती है।

काव्य वह वाक्य रचना है जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो अर्थात् वह जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। रसगंगाधर में 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है। 'अर्थ की रमणीयता' के अंतर्गत शब्द की रमणीयता (शब्दलंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं। पर 'अर्थ' की 'रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। साहित्य दर्पणाकार विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे ठीक जँचता है। उसके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है। रस अर्थात् मनोवेगों का सुखद संचार की काव्य की आत्मा है।

काव्यप्रकाश में काव्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र। ध्वनि वह है जिसमें शब्दों से निकले हुए अर्थ (वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अभिप्राय (व्यंग्य) प्रधान हो। गुणीभूत ब्यंग्य वह है जिसमें अर्थ गौण हो। चित्र या अलंकार वह है जिसमें बिना ब्यंग्य के चमत्कार हो। इन तीनों को क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं। काव्यप्रकाशकार का जोर छिपे

हुए भाव पर अधिक जान पड़ता है, रस के उद्रेक पर नहीं। काव्य के दो और भेद किए गए हैं, महाकाव्य और खंड काव्य। महाकाव्य सर्गबद्ध और उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुण संपन्न क्षत्रिय होना चाहिए। उसमें शृंगार, वीर या शांत रसों में से कोई रस प्रधान होना चाहिए। बीच बीच में करुणाय हास्य इत्यादि और रस तथा और लोगों के प्रसंग भी आने चाहिए। कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए। काव्य दो प्रकार का माना गया है, दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है, जो अभिनय द्वारा दिखलाया जाय, जैसे, नाटक, प्रहसन, आदि जो पढ़ने और सुनने योग्य हो, वह श्रव्य है। श्रव्य काव्य दो प्रकार का होता है, गद्य और पद्य। पद्य काव्य के महाकाव्य और खंडकाव्य दो भेद कहे जा चुके हैं। गद्य काव्य के भी दो भेद किए गए हैं- कथा और आख्यायिका। चंपू, विरुद और कारंभक तीन प्रकार के काव्य और माने गए है।

सामान्यत: संस्कृत के काव्य-साहित्य के दो भेद किये जाते हैं- दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य शब्दों के अतिरिक्त पात्रों की वेशभूषा, भावभंगिमा, आकृति, क्रिया और अभिनय द्वारा दर्शकों के हृदय में रसोन्मेष कराता है। दृश्यकाव्य को 'रूपक' भी कहते हैं क्योंकि उसका रसास्वादन नेत्रों से होता है। श्रव्य काव्य शब्दों द्वारा पाठकों और श्रोताओं के हृदय में रस का संचार करता है। श्रव्यकाव्य में पद्य, गद्य और चम्पू काव्यों का समावेश किया जाता है। गत्यर्थक में पद् धातु से निष्पन 'पद्य' शब्द गति की प्रधानता सूचित करता है। अत: पद्यकाव्य में ताल, लय और छन्द की व्यवस्था होती है। पुन: पद्यकाव्य के दो उपभेद किये जाते हैं। महाकाव्य और खण्डकाव्य। खण्डकाव्य को 'मुक्तकाव्य' भी कहते हैं। खण्डकाव्य में महाकाव्य के समान जीवन का सम्पूर्ण इतिवृत्त न होकर किसी एक अंश का वर्णन किया जाता है।

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।–साहित्यदर्पण, 6321

कवित्व के साथ-साथ संगीतात्कता की प्रधानता होने से ही इनको हिन्दी में 'गीतिकाव्य' भी कहते हैं। 'गीति' का अर्थ हृदय की रागात्मक भावना को छन्दोबद्ध रूप में प्रकट करना है। गीति की आत्मा भावातिरेक है। अपनी रागात्मक अनुभूति और कल्पना के कवि वर्ण्यवस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतिकाव्य में काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्त होकर वैयक्तिक अनुभव को सरलता से अभिव्यक्त किया जाता है। स्वरूपत: गीतिकाव्य का आकार-प्रकार

महाकाव्य से छोटा होता है। इन सब तत्त्वों के सहयोग से संस्कृत मुक्तककाव्य को एक उत्कृष्ट काव्यरूप माना जाता है। मुक्तकाव्य महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

संस्कृत में गीतिकाव्य मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रूपों में प्राप्त होता है। प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत है। अधिकांश प्रबन्ध गीतिकाव्य इसी के अनुकरण पर लिखे गये हैं। मुक्तक वह हैजिसमें प्रत्येक पद्य अपने आप में स्वतंत्र होता है। इसके सुन्दर उदाहरण अमरूकशतक और भतृहरिशतकत्रय हैं। संगीतमय छन्द मधुर पदावली गीतिकाव्यों की विशेषता है। शृंगार, नीति, वैराग्य और प्रकृति इसके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। नारी के सौन्दर्य और स्वभाव का स्वाभाविक चित्रण इन काव्यों में मिलता है। उपदेश, नीति और लोकव्यवहार के सूत्र इनमें बड़े ही रमणीय ढंग से प्राप्त हो जाते हैं। यही कारण है कि मुक्तकाव्यों में सूक्तियों और सुभाषितों की प्राप्ति प्रचुरता से होती है।

मुक्तककाव्य की परम्परा स्फुट सन्देश रचनाओं के रूप में वैदिक युग से ही प्राप्त होती है। ऋग्वेद में सरमा नामक कुत्ते को सन्देशवाहक के रूप में भेजने का प्रसंग है। वैदिक मुक्तककाव्य के उदाहरणों में वशिष्ठ और वामदेव के सूक्त, उल्लेखनीय हैं। रामायण, महाभारत और उनके परवर्ती ग्रन्थों में भी इस प्रकार के स्फुट प्रसंग विपुल मात्रा में उपलब्ध होते हैं। कदाचित् महाकवि वाल्मीकि के शाकोद्गारों में यह भावना गोपित रूप में रही है। पतिवियुक्ता प्रवासिनी सीता के प्रति प्रेषित श्री राम के संदेशवाहक हनुमान, दुर्योधन के प्रति धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा प्रेषित श्रीकृष्ण और सुन्दरी दयमन्ती के निकट राजा नल द्वारा प्रेषित सन्देशवाहक हंस इसी परम्परा के अन्तर्गत गिने जाने वाले प्रसंग हैं। इस सन्दर्भ में भागवत पुराण का वेणुगीत विशेष रूप से उद्धरणीय है जिसकी रसविभोर करने वाली भावना छवि संस्कृत मुक्तककाव्यों पर अंकित है।

काव्य का प्रयोजन

राजशेखर ने कविचर्या के प्रकरण में बताया है कि कवि को विद्याओं और उपविद्याओं की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। व्याकरण, कोश, छन्द, और अलंकार – ये चार विद्याएँ हैं। 64 कलाएँ ही उपविद्याएँ हैं। कवित्व के 8 स्रोत हैं– स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्कथा, बहुश्रुतता, स्मृतिदृढता और राग।

स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्वत्कथा बहुश्रुतता।
स्मृतिदाढर्यमनिर्वेदश्च मातरोऽष्टौ कवित्वस्य (काव्यमीमांसा)

मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताये हैं-

काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे

(काव्य यश और धन के लिये होता है। इससे लोक-व्यवहार की शिक्षा मिलती है। अमंगल दूर हो जाता है। काव्य से परम शान्ति मिलती है और कविता से कान्ता के समान उपदेश ग्रहण करने का अवसर मिलता है।)

काव्य परिभाषा

कविता या काव्य क्या है इस विषय में भारतीय साहित्य में आलोचकों की बड़ी समृद्ध परंपरा है। आचार्य विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ, पंडित अंबिकादत्त व्यास, आचार्य श्रीपति, भामह आदि संस्कृत के विद्वानों से लेकर आधुनिक आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा जयशंकर प्रसाद जैसे प्रबुद्ध कवियों और आधुनिक युग की मीरा महादेवी वर्मा ने कविता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए अपने अपने मत व्यक्त किए हैं। विद्वानों का विचार है कि मानव हृदय अनन्त रूपतामक जगत के नाना रूपों, व्यापारों में भटकता रहता है, लेकिन जब मानव अहं की भावना का परित्याग करके विशुद्ध अनुभूति मात्रा रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं। कविता मनुष्य को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित घेरे से ऊपर उठाती है और शेष सृष्टि से रागात्मक सम्बंध जोड़ने में सहायक होती है। काव्य की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। ये परिभाषाएं आधुनिक हिंदी काव्य के लिए भी सही सिद्ध होती हैं। काव्य सिद्ध चित्त को अलौकिक आनंदानुभूति कराता है तो हृदय के तार झंकृत हो उठते हैं। काव्य में सत्यं शिवं सुंदरम् की भावना भी निहित होती है। जिस काव्य में यह सब कुछ पाया जाता है वह उत्तम काव्य माना जाता है।

काव्य के भेद

काव्य के भेद दो प्रकार से किए गए हैं-

स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद और
शैली के अनुसार काव्य के भेद

स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद

स्वरूप के आधार पर काव्य के दो भेद हैं - श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य।

श्रव्य काव्य

जिस काव्य का रसास्वादन दूसरे से सुनकर या स्वयं पढ़ कर किया जाता है उसे श्रव्य काव्य कहते हैं। जैसे रामायण और महाभारत।

श्रव्य काव्य के भी दो भेद होते हैं - प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य।

प्रबंध काव्य

इसमें कोई प्रमुख कथा काव्य के आदि से अंत तक क्रमबद्ध रूप में चलती है। कथा का क्रम बीच में कहीं नहीं टूटता और गौण कथाएँ बीच-बीच में सहायक बन कर आती हैं। जैसे रामचरित मानस।

प्रबंध काव्य के दो भेद होते हैं - महाकाव्य एवं खण्डकाव्य।

1. महाकाव्य इसमें किसी ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुष की संपूर्ण जीवन कथा का आद्योपांत वर्णन होता है। महाकाव्य में ये बातें होना आवश्यक हैं–

(क) महाकाव्य का नायक कोई पौराणिक या ऐतिहासिक हो और उसका धीरोदात्त होना आवश्यक है।

जीवन की संपूर्ण कथा का सविस्तार वर्णन होना चाहिए।

शृंगार, वीर और शांत रस में से किसी एक की प्रधानता होनी चाहिए। यथास्थान अन्य रसों का भी प्रयोग होना चाहिए।

उसमें सुबह, शाम, दिन, रात, नदी, नाले, वन, पर्वत, समुद्र आदि प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक चित्रण होना चाहिए।

आठ या आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए, प्रत्येक सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होना चाहिए तथा सर्ग के अंत में अगले अंक की सूचना होनी चाहिए।

2. खंडकाव्य इसमें किसी की संपूर्ण जीवनकथा का वर्णन न होकर केवल जीवन के किसी एक ही भाग का वर्णन होता है। खंड काव्य में ये बातें होना आवश्यक हैं–

कथावस्तु काल्पनिक हो।

उसमें सात या सात से कम सर्ग हों।

उसमें जीवन के जिस भाग का वर्णन किया गया हो वह अपने लक्ष्य में पूर्ण हो।

प्राकृतिक दृश्य आदि का चित्रण देश काल के अनुसार और संक्षिप्त हो।

मुक्तक

इसमें केवल एक ही पद या छंद स्वतंत्र रूप से किसी भाव या रस अथवा कथा को प्रकट करने में समर्थ होता है। गीत कवित्त दोहा आदि मुक्तक होते हैं।

दृश्य काव्य

जिस काव्य की आनंदानुभूति अभिनय को देखकर एवं पात्रों से कथोपकथन को सुन कर होती है उसे दृश्य काव्य कहते हैं। जैसे– नाटक या चलचित्र में।

शैली के अनुसार काव्य के भेद

1. पद्य काव्य–इसमें किसी कथा का वर्णन काव्य में किया जाता है, जैसे गीतांजलि

2. गद्य काव्य– इसमें किसी कथा का वर्णन गद्य में किया जाता है, जैसे जयशंकर की कामायनी। गद्य में काव्य रचना करने के लिए कवि को छंद शास्त्र के नियमों से स्वच्छंदता प्राप्त होती है।

3. चंपू काव्य–इसमें गद्य और पद्य दोनों का समावेश होता है। मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' चंपू काव्य है।

काव्य का इतिहास

आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास लगभग 800 साल पुराना है और इसका प्रारंभ तेरहवीं शताब्दी से समझा जाता है। हर भाषा की तरह हिंदी कविता भी पहले इतिवृत्तात्मक थी। यानि किसी कहानी को लय के साथ छंद में बांध कर अलंकारों से सजा कर प्रस्तुत किया जाता था। भारतीय साहित्य के सभी प्राचीन ग्रंथ कविता में ही लिखे गए हैं। इसका विशेष कारण यह था कि लय और छंद के कारण कविता को याद कर लेना आसान था। जिस समय छापेखाने का आविष्कार नहीं हुआ था और दस्तावेजों की अनेक प्रतियां बनाना आसान नहीं था उस समय महत्वपूर्ण बातों को याद रख लेने का यह सर्वोत्तम साधन था। यही कारण है कि उस समय साहित्य के साथ साथ राजनीति, विज्ञान और आयुर्वेद को भी पद्य (कविता) में ही लिखा गया। भारत की प्राचीनतम कविताएं संस्कृत

भाषा में ऋग्वेद में हैं जिनमें प्रकृति की प्रशस्ति में लिखे गए छंदों का सुंदर संकलन हैं। जीवन के अनेक अन्य विषयों को भी इन कविताओं में स्थान मिला है।

पद्य काव्य के भेद

महाकाव्य

राष्ट्रीय एकता प्रत्येक देश के लिए महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय एकता की आधारशिला है सांस्कृतिक एकता और सांस्कृतिक एकता का सबसे प्रबल माध्यम साहित्य की परिधि के अन्तर्गत महाकाव्यों का विशेष महत्व है, जिनके वृहत् कलेवर में राष्ट्रीय एकता को प्रभावी रीति से प्रतिफल करने का पूर्ण अवसर रहता है। भारतीय महाकाव्य का आयोजन इसी से प्रेरित होकर किया गया है। इसमें तीन प्राचीन भाषाओं - संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अंग्रेजी को मिलाकर तेरह आधुनिक भाषाओं के 26 प्रमुख महाकाव्यों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। काव्य-वस्तु की दृष्टि से महाकाव्य पाँच प्रकार के है -

1. रामायण महाकाव्य,
2. महाभारत महाकाव्य,
3. चरितकाव्य,
4. रम्याख्यान और
5. दार्शनिक या प्रतीकात्मक महाकाव्य।

यह कार्य विभिन्न भाषाओं के अधिकारी विद्वानों द्वारा संपन्न हुआ है।

भारत में रामायण और महाभारत अद्यतन महाकाव्यों के उद्‌गम और प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। परवर्ती महाकाव्यों की रचना सार्वजनिक वाचक के लिए नहीं, वरन् कलाकृति के रूप में हुई है। इसलिए इन्हें 'कलात्मक महाकाव्य' की संज्ञा देना उपयुक्त होगा। इस वर्ग के महाकाव्यों की भारत में एक सुदीर्घ परंपरा है - जो 'कुमारसंभव' 'रघुवंश' आदि संस्कृत महाकाव्यों से आरंभ होकर आधुनिक भाषाओं में 'कामायनी' तथा 'श्रीरामायण दर्शन' आदि तक निरंतर प्रवाहमान है। ललित काव्य की एक विधा का रूप धारण कर महाकाव्य 'साहित्यशास्त्र' का विषय बन गया और आचार्यों ने साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उसे भी लक्षणवद्ध कर दिया। महाकाव्य संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य का प्रथम

सूत्रबद्ध लक्षण आचार्य भामह ने प्रस्तुत किया है और परवर्ती आचार्यों में दंडी, रुद्रट तथा विश्वनाथ ने अपने अपने ढंग से इस लक्षण का विस्तार किया है। आचार्य विश्वनाथ का लक्षणनिरूपण इस परंपरा में अंतिम होने के कारण सभी पूर्ववर्ती मतों के सारसंकलन के रूप में उपलब्ध है।

महाकाव्य की विशेषताएँ

महाकाव्य की विशेषताएँ सामान्यत: इस प्रकार है-

'महाकाव्य' पद में उपयुक्त 'महा' विशेषण एक ओर उसके महान् कलेवर अर्थात विपुल-व्यापक आकार और दूसरी ओर उसकी महान् विषय-वस्तु अर्थात प्रतिपाद्य विषय की गौरव-गरिमा का समान रूप से द्योतन करता है।

आकार की व्यापकता का अर्थ है कि उनमें जीवन का सर्वांग-चित्रण रहता है। प्रभावशाली महापुरुष का जीवन होने के कारण उसका विस्तार अनायास ही संपूर्ण देशकाल तक हो जाता है। अत: महाकाव्य की कथा-परिधि में जीवन के समस्त सामाजिक, राजनीतक पक्ष एवं आयाम और उनके परिवेश रूप में विभिन्न दृश्यों और रूपों का समावेश रहता है। ये सभी वर्णन साधारण जीवन की क्षुद्रताओं से मुक्त एक विशेष स्तर पर अवस्थित रहते हैं।

महाकाव्य की कथावस्तु एक महान् उद्देश्य से परिचालित होती है। अनेक संघर्षों से गुजरती हुई वह अंतत: महत्तर मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है। इन महत्तर मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा अंतत: जिस घटना के द्वारा होती है, वहीं महाकाव्य का महत्कार्य होता है।

महान कार्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उसका साधक उसके अनुरूप चारित्रक गुणों और शक्तियों से सम्पन हो। अत: महाकाव्य का नायक अथवा केन्द्रीय पात्र असाधारण शक्ति और गुणों से सम्पन्न होता है और ये गुण उसके सहयोगी तथा विरोधी पात्रों में भी विभिन्न अनुपातों में विद्यमान रहते हैं।

उपर्युक्त सार को वहन करने में समर्थ महाकाव्य की शैली भी स्वभावत: अत्यन्त गरिमा-विशिष्ट होनी चाहिए। इसलिए आचार्यों ने यह व्यवस्था दी है कि महाकाव्य की शैली साधारण स्तर से भिन्न, क्षुद्र प्रयोगों से मुक्त अलंकृत होनी चाहिए। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में यूनानी-रोमी आचार्य लोंजाइनस से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक सुधी समीक्षकों ने इस संदर्भ में 'उदात्त तत्त्व' पर विशेष बल दिया गया है, जो महाकाव्य की मूल चेतना की अभिव्यक्ति करने में अपेक्षाकृत

अधिक सक्षम है। अतः उसके आधार पर उदात्त कथानक, उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य, उदात्त चरित्र, उदात्त भाव-संपदा और उदात्त शैली को महाकाव्य के मूल तत्त्वों के रूप में रेखांकित किया गया है।

महाकाव्य के लक्षण

विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है -

जिसमें सर्गों का निबंधन हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमें क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हों, नायक होता है। कहीं एक वंश के अनेक सत्कुलीन भूप भी नायक होते हैं।शृंगार, वीर और शांत में से कोई एक अंगी होता है तथा अन्य सभी रस अंग रूप होते हैं। उसमें सब नाटक संधियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित होती है। चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है। आरंभ में नमस्कार, आशीर्वाद या वर्ण्यवस्तुनिर्देश होता है। कहीं खलों की निंदा तथा सज्जनों का गुणकथन होता है। न अत्यल्प और न अतिदीर्घ अष्टाधिक सर्ग होते हैं जिनमें से प्रत्येक की रचना एक ही रस में की जाती है और सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होता है। कहीं कहीं एक ही सर्ग में अनेक छंद भी होते हैं। सर्ग के अंत में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए। उसमें संध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग, विप्रलंभ, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा और विवाह आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। आचार्य विश्वनाथ का उपर्युक्त निरूपण महाकाव्य के स्वरूप की वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध परिभाषा प्रस्तुत करने के स्थान पर उसकी प्रमुख और गौण विशेषताओं का क्रमहीन विवरण उपस्थित करता है। इसके आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र में उपलब्ध महाकाव्य के लक्षणों का सार इस प्रकार किया जा सकता है-

कथानक

महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा इतिहासाश्रित होना चाहिए।

विस्तार-कथानक का कलेवर जीवन के विविध रूपों एवं वर्णनों से समृद्ध होना चाहिए। ये वर्णन प्राकृतिक, सामाजिक, और राजीतिक क्षेत्रों से इस प्रकार संबंद्ध होने चाहिए कि इनके माध्यम से मानव जीवन का पूर्ण चित्र उसके संपूर्ण वैभव, वैचित्रय एवं विस्तार के साथ उपस्थित हो सके। इसीलिए उसका आयाम विस्तृत होना चाहिए।

विन्यास

कथानक की संघटना नाट्य संधियों के विधान से युक्त होनी चाहिए अर्थात महाकाव्य के कथानक का विकास क्रमिक होना चाहिए। उसकी आधिकारिक कथा एवं अन्य प्रकरणों का पारस्परिक संबंध उपकार्य–उपकारक–भाव से होना चाहिए तथा इनमें औचित्यपूर्ण अर्थ अवस्थित रहनी चाहिए।

नायक–महाकाव्य का नायक देवता या सदृश क्षत्रिय हो, जिसका चरित्र धीरोदात्त गुणों से समन्वित हो -- अर्थात् वह महासत्त्व, अत्यंत गंभीर, क्षमावान् अविकत्थन, स्थिरचरित्र, निगूढ़, अहंकारवान् और दृढ़व्रात होना चाहिए। पात्र भी उसी के अनुरूप विशिष्ट व्यक्ति, राजपुत्र, मुनि आदि होने चाहिए।

रस–महाकाव्य में शृंगार, वीर, शांत एवं करुण में से किसी एक रस की स्थिति अंगी रूप में तथा अन्य रसों की अंग रूप में होती है।

फल–महाकाव्य सत्य होता है अर्थात् उसकी प्रवृत्ति शिव एवं सत्य की ओर होती है और उसका उद्देश्य होता है चतुवर्ग की प्राप्ति।

शैली–शैली के संदर्भ में संस्कृत के आचार्यों ने प्रायः अत्यंत स्थूल रूढ़ियों का उल्लेख किया है - उदाहरणार्थ एक ही छंद में सर्ग रचना तथा सर्गांत में छंदपरिवर्तन, अष्टाधिक सर्गों में विभाजन, नामकरण का आधार आदि। परंतु महाकाव्य के अन्य लक्षणों के आलोक में यह स्पष्ट ही है कि महाकाव्य की शैली नानावर्णन क्षमा, विस्तारगर्भा, श्रव्य वृत्तों से अलंकृत, महाप्राण होनी चाहिए। आचार्य भामह ने इस भाषा को सालंकार, अग्राम्य शब्दों से युक्त अर्थात शिष्ट नागर भाषा कहा है।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार रामायण महाकाव्य के जिन लक्षणों का निरूपण भारतीय आचार्यों ने किया, शब्दभेद से उन्हीं से मिलती जुलती विशेषताओं का उल्लेख पश्चिम के आचार्यों ने भी किया है। अरस्तू ने त्रासदी से महाकाव्य की तुलना करते हुए कहा है कि 'गीत एवं दृश्यविघान के अतिरिक्त दोनों के अंग भी समान ही हैं। अर्थात महाकाव्य के मूल तत्त्व चार हैं -

1. कथावस्तु,
2. चरित्र,
3. विचारतत्त्व और
4. पदावली।

कथावस्तु

कथावस्तु के संबंध में उनका मत है कि महाकाव्य की कथावस्तु एक ओर शुद्ध ऐतिहासिक यथार्थ से भिन्न होती है ओर दूसरी ओर सर्वथा काल्पनिक भी नहीं होती। वह प्रख्यात होनी चाहिए, और उसमें यथार्थ से भव्यतर जीवन का अंकन होना चाहिए।

कथावस्तु का आयाम विस्तृत होना चाहिए जिसके अंतर्गत विविध उपाख्यानों का समावेश हो सके। उसमें अपनी सीमाओं का विस्तार करने की बड़ी क्षमता होती है क्योंकि त्रासदी की भांति वह रंगमंच की देशकाल संबंधी सीमाओं में परिबद्ध नहीं होता। उसमें अनेक घटनाओं का सहज समावेश हो सकता है जिससे एक ओर काव्य को घनत्व और गरिमा प्राप्त होती है और दूसरी ओर अनेक उपाख्यानों के नियोजन के कारण रोचक वैविध्य उत्पन्न हो जाता है।

किंतु कथानक का यह विस्तार अनियंत्रित नहीं होना चाहिए। उसमें एक ही कार्य होना चाहिए जो आदि मध्य अवसान से युक्त एवं स्वत: पूर्ण हो। समस्त उपाख्यान इसी प्रमुख कार्य के साथ संबद्ध और इस प्रकार से गुंथित हों कि उनका परिणाम एक ही हो।

इसके अतिरिक्त त्रासदी के वस्तुसंगठन के अन्य गुण -- पूर्वापरक्रम, संभाव्यता तथा कुतूहल -- भी महाकाव्य में यथावत् विद्यमान रहते हैं। उसकी परिधि में अद्‌भुत एवं अतिप्राकृत तत्त्व के लिये अधिक अवकाश रहता है और कुतूहल की संभावना भी महाकाव्य में अपेक्षाकृत अधिक रहती है। कथानक के सभी कुतूहलवर्धक अंग, जैसे स्थितिविपर्यय, अभिज्ञान, संवृति और विवृति, महाकाव्य का भी उत्कर्ष करते हैं।

पात्र

महाकाव्य के पात्रों के संबंध में अरस्तू ने केवल इतना कहा है कि 'महाकाव्य और त्रासदी में यह समानता है कि उसमें भी उच्चतर कोटि के पात्रों की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है। त्रासदी के पात्रों से समानता के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि महाकाव्य के पात्र भी प्राय: त्रासदी के समान भद्र, वैभवशाली, कुलीन और यशस्वी होने चाहिए। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है।

प्रयोजन और प्रभाव–अरस्तू के अनुसार महाकाव्य का प्रभाव और प्रयोजन भी त्रासदी के समान होना चाहिए, अर्थात मनोवेगों का विरेचन, उसका प्रयोजन और तज्जन्य मन:शांति उसका प्रभाव होना चाहिए। यह प्रभाव नैतिक अथवा रागात्मक अथवा दोनों प्रकार का हो सकता है।

भाषा, शैली और छंद–अरस्तू के शब्दों में महाकाव्य की शैली का भी 'पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न (प्रसादगुण युक्त) हो किंतु क्षुद्र न हो। अर्थात् गरिमा तथा प्रसादगुण महाकाव्य की शैली के मूल तत्त्व हैं, और गरिमा का आधार है असाधारणता। उनके मतानुसार महाकाव्य की भाषाशैली त्रासदी की करुणमधुर अलंकृत शैली से भिन्न, लोकातिक्रांत प्रयोगों से कलात्मक, उदात्त एवं गरिमावरिष्ठ होनी चाहिए।

वीर छंद के प्रयोग पर बल

महाकाव्य की रचना के लिये वे आदि से अंत तक एक ही छंद - वीर छंद-के प्रयोग पर बल देते हैं क्योंकि उसका रूप अन्य वृत्तों की अपेक्षा अधिक भव्य एवं गरिमामय होता है जिसमें अप्रचलित एवं लाक्षणिक शब्द बड़ी सरलता से अंतर्भुक्त हो जाते हैं। परवर्ती विद्वानों ने भी महाकाव्य के विभिन्न तत्त्वों के संदर्भ में उन्हीं विशेषताओं का पुनराख्यान किया है जिनका उल्लेख आचार्य अरस्तू कर चुके थे। वीरकाव्य (महाकाव्य) का आधार सभी ने जातीय गौरव की पुराकथाओं को स्वीकार किया हे। जॉन हेरिंगटन वीरकाव्य के लिये ऐतिहासिक आधारभूमि की आवश्यकता पर बल देते हैं और स्पेंसर वीरकाव्य के लिये वैभव और गरिमा को आधारभूत तत्त्व मानते हैं। फ्रांस के कवि आलोचकों पैलेतिए, वोकलें और रोनसार आदि ने भी महाकाव्य की कथावस्तु को सर्वाधिक गरिमामय, भव्य और उदात्त करते हुए उसके अंतर्गत ऐसे वातावरण के निर्माण का आग्रह किया है, जो क्षुद्र घटनाओं से मुक्त एवं भव्य हो।

महाकाव्य के मूल तत्त्व

भारतीय और पाश्चात्य आलोचकों के उपर्युक्त निरूपण की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में ही महाकाव्य के विभिन्न तत्त्वों के संदर्भ में एक ही गुण पर बार-बार शब्दभेद से बल दिया गया है और वह है भव्यता एवं गरिमा, जो औदात्य के अंग हैं। वास्तव में, महाकाव्य व्यक्ति की चेतना से अनुप्राणित न होकर समस्त युग एवं राष्ट्र की चेतना से अनुप्राणित होता है।

इसी कारण उसके मूल तत्त्व देशकाल सापेक्ष न होकर सार्वभौम होते हैं, जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव में, परंपरागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी, किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित करना संभव नहीं होता। ये मूल तत्त्व हैं -

1. उदात्त कथानक
2. उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य
3. उदात्त चरित्र
4. उदात्त भाव और
5. उदात्त शैली।

इस प्रकार औदात्य अथवा महत्तत्व ही महाकाव्य का प्राण है।

खंड काव्य साहित्य में प्रबंध काव्य का एक रूप है। किसी घटना विशेष को लेकर, जो जीवन में घटित होती है, उस पर लिखा गया काव्य खंड काव्य कहा जाता है।

परिभाषा

'खंड काव्य' की संस्कृत साहित्य में जो एकमात्राा परिभाषा उपलब्ध है, वह इस प्रकार है-

भाषा विभाषा नियमात् काव्यं सर्गसमुत्थितम्
एकार्थप्रवणैरू पद्यैरू संधि-साग्रयवर्जितम्
खंड काव्यं भवेत् काव्यस्यैक देशानुसारि च।

इस परिभाषा के अनुसार- 'किसी भाषा या उपभाषा में सर्गबद्ध एवं एक कथा का निरूपक ऐसा पद्यात्मक ग्रंथ जिसमें सभी संधियां न हों, वह 'खंड काव्य' है।' वह महाकाव्य के केवल एक अंश का ही अनुसरण करता है। तदनुसार हिंदी के कतिपय आचार्य खंड काव्य ऐसे काव्य को मानते हैं, जिसकी रचना तो महाकाव्य के ढंग पर की गई हो, पर उसमें समग्र जीवन न ग्रहण कर केवल उसका खंड विशेष ही ग्रहण किया गया हो। अर्थात् खंड काव्य में एक खंड जीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है, जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः प्रतीत हो।

'खंड काव्य' शब्द से ही स्पष्ट होता है कि इसमें मानव जीवन की किसी एक ही घटना की प्रधानता रहती है, जिसमें चरित नायक का जीवन सम्पूर्ण रूप

में कवि को प्रभावित नहीं करता। कवि चरित नायक के जीवन की किसी सर्वोत्कृष्ट घटना से प्रभावित होकर जीवन के उस खंड विशेष का अपने काव्य में पूर्णतया उद्‌घाटन करता है।

काव्य के भेद

हिन्दी साहित्य में काव्य के तीन मुख्य भेद प्रचलित हैं-

1. महाकाव्य
2. खण्ड-काव्य
3. मुक्तक काव्य।

खंड काव्य में मुख्य चरित्र की किसी एक प्रमुख विशेषता का चित्रण होने के कारण अधिक विविधता और विस्तार नहीं होता।

'मुक्तक काव्य' में कथा-सूत्र आवश्यक नहीं है। इसलिए उसमें घटना और चरित्र के अनिवार्य प्रसंग में भाव-योजना नहीं होती। वह किसी भाव-विशेष को आधार बनाकर की गई स्वतंत्र रचना है।

हिन्दी साहित्य में खंड काव्य प्रबंध काव्य का एक रूप है।

वस्तुतः खंड काव्य एक ऐसा पद्यबद्ध काव्य है, जिसके कथानक में एकात्मक अन्विति हो, कथा में एकांगिता हो तथा कथा विन्यास क्रम में आरंभ, विकास, चरम सीमा और निश्चित उद्देश्य में परिणति हो और वह आकार में लघु हो।

लघुता के मापदंड के रूप में आठ से कम सर्गों के प्रबंध काव्य को खंडकाव्य माना जाता है।

लक्षण

'काव्य-शास्त्र' में खंड काव्य के लक्षण गिना दिए गए हैं, जो निम्नानुसार हैं-

खंड काव्य के विषय में कहा गया है कि वह एक देशानुसारी होता है। यहाँ देश का अर्थ भाग या अंश है।

खंड काव्य में भी सर्ग होते हैं। हर सर्ग में छंद का बंधन इसमें भी होता है, लेकिन छंद परिवर्तन जरूरी नहीं है। प्रकृति वर्णन आदि हो सकता है, लेकिन वह भी आवश्यक नहीं है।

हिंदी साहित्य के खंड काव्य

आदिकाल में रचित खंड काव्य
अब्दुर्रहमान कृत संदेशरासक
नरपतिनाल्ह कृत बीसलदेव रासो
जिनधर्मसुरि कृत थूलिभद्दफाग

भक्तिकाल में रचित खंड काव्य

नरोत्तमदास कृत सुदामाचरित
नंददास कृत भँवरगीत, रुक्मिणी मंगल
तुलसीदास कृत पार्वती मंगल, जानकी मंगल

रीतिकाल में रचित खंड काव्य

पद्माकर विरचित हिम्मत बहादुर विरुदावली
आधुनिक काल के खंड काव्य (भारतेंदु युग)
श्रीधर पाठक का एकांतवासी योगी
जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का हरिश्चंद्र

द्विवेदी युग में रचित खंड काव्य

मैथिलीशरण गुप्त–रंग में भंग, जयद्रथ वध, नलदमयंती, शकुंतला, किसान, अनाथ

सियारामशरण गुप्त–मौर्य विजय

रामनरेश त्रिपाठी–मिलन, पथिक

द्वारिका प्रसाद गुप्त–आत्मार्पण

छायावाद युग में रचित खंड काव्य

सुमित्रनंदन पंत–ग्रंथि

रामनरेश त्रिपाठी–स्वप्न

मैथिलीशरण गुप्त –पंचवटी, अनध, वनवैभव, वक-संहार

अनूप शर्मा–सुनाल

सियारामशरण गुप्त–आत्मोत्सर्ग

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला–तुलसीदास

शिवदास गुप्त–कीचक वध
श्याम लाल पाठक–कंसवध
रामचंद्रशुक्ल 'सरस–अभिमन्यु वध
गोकुल चंद्र शर्मा–प्रणवीर प्रताप
नाथूराम शंकर शर्मा–गर्भरण्डा रहस्य, वायस विजय

छायावादोत्तर युग में विरचित खंड काव्य

मैथिलीशरण गुप्त–नहुष, कर्बला, नकुल, हिडिम्बा
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन–प्राणार्पण
सोहनलाल द्विवेदी–कुणाल
रामधारी सिंह दिनकर–कुरुक्षेत्र
श्याम नारायण पांडे–जय हनुमान
उदयशंकर भट्ट–कौन्तेय-कथा
आनंद मिश्र–चंदेरी का जौहर
गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश–प्रयाण
गोपालप्रसाद व्यास–कदम-कदम बढ़ाए जा
डॉ रुसाल–भोजराज
नरेश मेहता–संशय की एक रात

प्रबन्ध और मुक्तक काव्य की दृष्टि से रासो काव्यों की समीक्षा

श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत पद्य को प्रबन्ध और मुक्तक दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रबन्ध काव्य को महाकाव्य और खण्ड काव्य दो भागों में बाँटा गया है तथा मुक्तक काव्य के भी पाठ्य और प्रगीत दो भाग किये गये। 'प्रबंध में पूर्वा पर का तारतम्य होता है। मुक्तक में इस तारतम्य का अभाव होता है।' प्रबंध में छंद कथानक के साथ एक सूत्रता स्थापित करते चलते हैं, तथा छंद अपने स्थान से हटा देने पर कथावस्तु का क्रम टूट जाता है, परन्तु मुक्तक काव्य में प्रत्येक छन्द अपने आप में स्वतन्त्र एवं पूर्ण अर्थ व्यक्त करता है। छन्द एक दूसरे के साथ जुड़कर किसी कथानक की रचना नहीं करते। 'मुक्तक छंद पारस्परिक बन्धन से मुक्त होते हैं, वे स्वत: पूर्ण होते हैं।"

महाकाव्य का स्वरुप

महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है। महाकाव्य में जीवन की समग्र रुप से अभिव्यक्ति की जाती है। व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन के साथ-साथ उसमें जातीय जीवन की भी समग्र रुप में अभिव्यक्ति होती है। बाबू गुलाबराय के अनुसार महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण निम्न प्रकार हैं-

यह सर्गों में बँधा हुआ होता है।

इसमें एक नायक रहता है, जो देवता या उत्तम वंश का धीरोदात्त गुणों से समन्वित पुरुष होता है। उसमें एक वंश के बहुत से राजा भी हो सकते हैं जैसे कि रघुवंश में।

श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस अंगी रुप से रहता है, नाटक की सब संधियाँ होती हैं।

इसका वृतान्त इतिहास प्रसिद्ध होता है या सज्जनाश्रित।

इसमें मंगलाचरण और वस्तु निर्देश होता है।

कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का गुण कीर्तन रहता है जैसे-कि रामचरित मानस में।

एक सर्ग में एक ही छन्द रहता है और अन्त में बदल जाता है। यह नियम शिथिल भी हो सकता है- जैसे कि राम चन्द्रिका में प्रवाह के लिए छंद की एकता वांछनीय है। सर्ग के अंत में अगले सर्ग की सूचना रहती है। कम से कम आठ सर्ग होने आवश्यक हैं।

इसमें संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, महयान, आखेट, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संग्राम, यात्र, अभ्युदय आदि विषयों का वर्णन रहता है।'

खण्ड काव्य का स्वरुप

जीवन की किसी घटना विशेष को लेकर लिखा गया काव्य खण्ड काव्य है। 'खण्ड काव्य' शब्द से ही स्पष्ट होता है कि इसमें मानव जीवन की किसी एक ही घटना की प्रधानता रहती है। जिसमें चरित नायक का जीवन सम्पूर्ण रुप में कवि को प्रभावित नहीं करता। कवि चरित नायक के जीवन की किसी सर्वोत्कृष्ट घटना से प्रभावित होकर जीवन के उस खण्ड विशेष का अपने काव्य में पूर्णतया उद्‌घाटन करता है।

प्रबन्धात्मकता महाकाव्य एवं खण्ड काव्य दोनों में ही रहती है परंतु खण्ड काव्य के कथासूत्र में जीवन की अनेकरुपता नहीं होती। इसलिए इसका कथानक कहानी की भाँति शीघ्रतापूर्वक अन्त की ओर जाता है। महाकाव्य प्रमुख कथा के साथ अन्य अनेक प्रासंगिक कथायें भी जुड़ी रहती हैं इसलिए इसका कथानक उपन्यास की भाँति धीरे-धीरे फलागम की ओर अग्रसर होता है। खण्डाकाव्य में केवल एक प्रमुख कथा रहती है, प्रासंगिक कथाओं को इसमें स्थान नहीं मिल पाता है।

ऊपर महाकाव्य और खण्डकाव्य के स्वरुप का विवेचन किया गया। इसके आधार पर जब हम विवेच्य रासो काव्यों को परखते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ये सभी रासो काव्य खण्ड काव्य हैं। सभी रासो ग्रन्थों की कथावस्तु की समीक्षा खण्डकाव्य के आधार पर आगे की जा रही है।

'दलपति राव रायसा' में दतिया नरेश दलपतिराव के किशारोवस्था से लेकर मृत्यु तक के जीवन काल का वर्णन है। दलपतिराव ने मुगलों के अधीन रहकर मुगल शासकों का पक्ष लेकर युद्ध किए हैं इसलिए दपलतिराव रायसा का कथानक दो कथा सूत्रों के साथ जुड़ा हुआ है। एक प्रमुख कथा काव्य नायक 'दलपति राव' के जीवन से सम्बन्धित है। दूसरी कथा मुगल शासकों के घराने से सम्बन्धित है। कवि का प्रमुख उद्देश्य महाराज दलपति राव की बड़ी उपलब्धियों का वर्णन करना रहा है। 'दलपति राव रायसा' में बीजापुर, गोलकुण्डा, अदौनी, जिन्जी तथा जाजऊ आदि स्थानों पर हुए युद्धों का वर्णन किया गया है। अलग-अलग घटनायें किसी निश्चित कथानक का निर्माण भले ही न करती हों, परन्तु इससे कवि के उद्देश्य की पूर्ति अवश्य हुई है। कवि का एकमात्रा उद्देश्य दलपतिराव के जीवन काल की सभी प्रमुख युद्ध की घटनाओं का वर्णन करना था, इसलिये किसी एक कथासूत्र का गठन नहीं हो सका। फिर दलपतिराव मुगल सत्ता के अधीन थे, अतः जहां जहां मुगल सेना के अभियान हुए, वहां वहां दलपति राव को युद्ध करने के लिये जाना पड़ा था, इस कारण भी घटना बहुलता स्वाभाविक है।

'दलपति राव रायसा' एक 'खण्ड काव्य' है। महाकाव्य की तरह न तो यह सर्गबद्ध है और न संध्या, सूर्य चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातः काल, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, वन, समुद्र, संग्राम, यात्रा, अभ्युदय आदि विषयों का वर्णन ही किया गया है। पर इसका नायक क्षत्रिय कुलोद्भूत धीरोदात्त है। 'दलपति राव रायसा' की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध है। इसमें दलपति राव के

सम्पूर्ण जीवन का वर्णन न होकर केवल कुछ घटनाओं का ही वग्रन है इसलिये 'दलपति राव रायसा' एक खण्ड काव्य रचना है। इसमें अनेक घटनाओं के जुड़े रहते हुए भी प्रबन्धात्मकता का निर्वाह किया गया है। पर यह अवश्य है कि वस्तुओं और नामों तथा जातियों की लम्बी-लम्बी सूचियाँ उपस्थित कर कवि ने कुछ स्थलों पर प्रबन्ध प्रवाह में शिथिलता उपस्थित कर दी है।

प्रारम्भ से अन्त तक के सभी युद्धों में विजय श्री दलपतिराब के साथ ही लगी है चाहे दलपति राव ने युद्ध अपने पिता शुभकर्ण के साथ दक्षिण में किशोरावस्था में हीं क्यों न लड़ा हो-

'ष्करहिया कौ रायसौ' गुलाब कवि की छोटी सी खण्डकाव्य कृति है।

इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता करहिया के पमारो और भरतपुराधीर जवाहर सिंह के मध्य हुए एक युद्ध का वर्णन किया है। डॉ. टीकमसिंह ने 'करहिया कौ रायसौ' को खण्ड काव्य बतलाते हुए निम्न प्रकार अपना मत व्यक्त किया है- 'गुलाब कवि के 'करहिया कौ रायसौ' नामक छोटे से खण्डकाव्य में करहिया-प्रदेश के परमारों का वर्णन करने से युद्ध के उत्तम वर्णन के तो काव्य में दर्शन हो जाते हैं, पर इससे कथानक की गति मंद अवश्य पड़ गई है।' यद्यपि गुलाब कवि को प्रबन्ध निर्बाह में सफलता प्राप्त हुई है तथापि परम्परा युक्त वर्णनों के मोह में पड़कर इन्होंने नामों आदि का बार-बार उल्लेख कर कथा प्रवाह में बाधा उपस्थित की है। 'करहिया कौ रायसा' का कथानक बहुत छोटा है। सरस्वती और गणेश की स्तुति के पश्चात् कवि ने आश्रयदाताओं की प्रशंसा की है तथा इसके पश्चात का वर्णन किया है, जिसमें अतिशयोक्तिपूर्वक करहिया के परमारों की विजय का वर्णन किया है। इसमें केवल एक ही मुख्य कथा ऐतिहासिक घटना प्रधान है। प्रासंगिक कथा को कहीं स्थान नहीं मिल पाया है। सूक्ष्म कथानक के कारण कथावस्तु वेगपूर्वक अन्विति की ओर अग्रसर होती हुई समाप्त होती है।

'शत्रुजीत रायसा' में महाराजा शत्रुजीत सिंह के जीवन की एक अंतिम महत्वपूर्ण घटना का चित्रण किया गया है। घटना विशेष का ही उद्घाटन करने के फलस्वरुप 'शत्रुजीत रायसा' एक खण्डकाव्य रचना है। 'शत्रुजीत रायसा' की घटना यद्यपि छोटी ही है, परन्तु कवि के वर्णन विशदता के द्वारा एक लम्बे चौड़े कथानक की सृष्टि कर दी है।

महाराजा शत्रुजीतसिंह क्षत्रिय कुलोत्पन्न धीरोदात्त नायक हैं। शत्रुजीत रायसा का कथानक इतिहास प्रसिद्ध घटना पर आधारित है। रायसे में सर्ग

विभाजन नहीं किया गया है। जल्दी जल्दी छन्द परिवर्तन द्वारा कवि ने सरसता और प्रवाह को पुष्ट किया है। शत्रुजीत रायसेमें कवि का लक्ष्य महाराजा शत्रुजीतसिंह की विजय का वर्णन करना है। ग्वालियर नरेश महादजी सिंधिया की विधवा बाइयों को महाराज शत्रुजीत सिंह ने सेंवढ़ा के किले में आश्रय दिया था, जिससे रुष्ट होकर सिंधिया महाराजा दौलतराव ने शत्रुजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिये अंबाजी इंगले के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी थी, पहली ही मुठभेड़ में अम्बाजी ने दतिया नरेश के बल वैभव की थाह ले ली और ग्वालियर नरेश के पास और अधिक सेना भेजने हेतु सूचना पहुँचाई। सहायतार्थ फ्रान्सीसी सेना नायक पीरु सहित चार पल्टनें भेजी गई। दूसरी बार की मुठभेड़ में भयंकर युद्ध के पश्चात अनिर्णीत ही युद्ध रोक कर दोनों पक्षों ने अपनी अगली योजनाओं पर विचार किया। यहाँ महाराज शत्रुजीत सिंह की विजय का लक्ष्य 'प्राप्त्याशा' में संदिग्ध हो गया। दतिया नरेश की सेना के जग्गो, लकवा तथा खींची दुरजन साल ने सम्मिलित रुप में मोर्चा जमाया। उधर पीरु ने चार पल्टनों सात सौ तुर्क सवार तथा पाँच हजार अन्य सेना के साथ कूचकर चम्बल पार कर भिण्ड होते हुए इन्दुरखी नामक स्थान पर डेरा डाला। अम्बाजी इंगलें तथा पीरु की सम्मिलित सेना का सामना करने के लिये महाराजा शत्रुजीत स्वयं तैयार हुये परन्तु उनके सलाहकारों ने युद्ध का उनके लिए यह उचित अवसर न बताकर उन्हें युद्ध में जाने से रोक दिया। यहाँ शत्रुजीत रासो के कथानक में चौथा मोड़ है। महाराजा शत्रुजीत की विजय योजना में फिर एक व्याधात उत्पन्न हो गया। युद्धस्थल में ही विश्राम, शौच, स्नान, ध्यान, पूजापाठ आदि की क्रियाओं के द्वारा युद्ध की योजनाओं को बिलम्बित किया गया है। पीरु ने सिंध नदी के किनारे बरा गिरवासा ग्राम के कछार में मोर्चा जमाया तथा यहीं पर महाराजा शत्रुजीत सिंह से निर्णायक युद्ध हुआ। महाराजा शत्रुजीत सिंह विजयी तो हुए परंतु घातक घाव लगने से उनकी मृत्यु हो गई थी।

उपर्युक्त विवरण से 'शत्रुजीत रासौ' की प्रबंधात्मकता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। कवि को कथासूत्र के निर्वाह में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

'श्रीधर' कवि का 'पारीछत रायसा' एक प्रबंध रचना है। इसके नायक दतिया नरेश पारीछत हैं। इस रायसे में एक छोटी सी घटना पर आधारित युद्ध का वर्णन किया गया है। दतिया नरेश के आश्रित कवि ने अपने चरितनायक के बल वैभव और वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। महाराज पारीछत उच्च क्षत्रिय कुल में उत्पन्न धीरोदात्त नायक है।

'पारीछत रायसा' के कथानक में दतिया और टीकमगढ़ राज्यों के सीमावर्ती गाँव बाघा में हुए युद्ध की एक घटना वर्णित है। युद्ध की घटना साधारण ही थी, परन्तु कवि ने कुछ बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है। श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव के अनुसार–श्रीधर के इस 'पारीछत रायसा' में नरेश के सम्पूर्ण शासनकाल का चित्र तो नहीं है– उनके शासन–काल की एक महत्वपूर्ण घटना का कुछ विस्तार से वर्णित हुई है।' इस प्रकार 'पारीछत रायसा' एक खण्ड काव्य है। टीकमगढ़ राज्य की ओर से बाघाइट के प्रबन्धक दीवान गन्धर्वसिंह ने गर्वपूर्वक दतिया राज्य के सीमावर्ती ग्राम पुतरी खेरा में आग लगवा दी थी और तरीचर गाँव टीकमगढ़ राज्य में मिला लिया, जो दतिया राज्य का एक गाँव था महाराज पादीछत को इसकी सूचना मिलने पर उन्होंने दीवान दिलीपसिंह के नेतृत्व में एक सेना गन्धर्व सिंह को दण्ड देने के लिये भेजी। दतिया की सेना उनाव, बड़े गाँव आदि स्थानों पर पड़ाव करती हुई बेतवा को नौहट घाट पर पारकर बाघाइट के समीप पहुँची। दोनों ओर की सेनाओं में एक हल्की सी मुठभेड़ हुई फिर एक जोरादार आक्रमण में दतिया की सेना ने दीवान गन्धर्व सिंह की सेना की पराजित किया। बाघाइट में आग लगा दी गई विजय श्री महाराज पारीछत को प्राप्त हुई। कथानक के प्रवाह में सर्वत्र सरल गतिमयता तो दिखाई देती है, परन्तु सरदारों के नामों और जातियों की लम्बी–लम्बी सूचियाँ प्रस्तुत करके कवि ने कथा प्रवाह में बाधा उत्पन्न की है। फिर भी कहा जा सकता है कि श्रीधर को प्रबन्ध निर्वाह में पर्याप्त सफलता मिली है। इस रायसे के कथानक को सर्गों में विभाजित नहीं किया गया। काव्य नायक के जीवन काल की किसी घटना विशेष का चित्रण ही होने के कारण ऐसे काव्य आकार में इतने संक्षिप्त होते हैं, जितना कि किसी महाकाव्य का एक सर्ग। अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 'श्रीधर' कवि द्वारा लिखित 'पादीछत रायसा' प्रबंध प्रवाह से युक्त एक खण्डकाव्य रचना है।

'ष्बाघाइट कौ राइसौ' में भी दतिया और टीकमगढ़ राज्यों के सीमा विवाद की घटना पर ही आधारित एक संक्षिप्त सा कथानक है। श्रीधर कवि का पारीछत रायसा एवं प्रधान आनन्द सिंह का 'बाघाइट कौ राइसौ' एक ही घटना और पात्रों पर लिखे गये दो अलग–अलग काव्य हैं। इन दोनों ग्रन्थों में मूलतः एक ही कथानक समाहित होते हुए भी वर्णन की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर है। बाघाइट को राइसौ के वर्णन बिल्कुल सीधे सादे अतिशयोक्ति रहित हैं। कवि दरबारी चाटुकारिता से अल्प प्रभावित दिखलाई पड़ता है। श्रीधर विशुद्ध प्रशंसा काव्य

लिखने वाले, धन, मान, मर्यादा के चाहने वाले राज्याश्रित कवि थे, संभवत: इसी कारण 'पारीछत रायसा' के सभी वर्णन अतिशयोक्ति से पूर्ण है। गन्धर्वसिंह दीवान, गनेश तथा महेन्द्र महाराजा विक्रमजीत सिंह के परामर्श का विवरण वाघाइट कौ राइसो में कुछ छन्दों में लिखा गया है, जबकि पारीछत रायसा में लगभग तीन पृष्ठ में यह बात कही गई है। प्रधान आनन्द सिंह ने मंगलाचरण के पश्चात केवल यह लिखकर आगे की घटना की सूचना दे दी है-श्री महेन्द्र महाराज ने तरीचर लैबे कौ मनसूबा करौ' इसी बात को पारीछत रायसा में यह साफ लिखा गया है कि दतिया नरेश ने सदैव ओरछा के महेन्द्र महाराज की रक्षा की तथा- दतिया महाराज ने ही विक्रमा जीतसिंह को राजतिलक किया था। इसी कारण ओरछा नरेश महाराज पारीछत को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। दीवान गन्धर्वसिंह के द्वारा पुतरी खेरा ग्राम में आग लगा दी गई तथा तरीचर ग्राम को अपने अधिकार में कर लिया गया था। लल्ला दौवा नाम के प्रबन्धक ने दतिया नरेश के पास इस घटना की सूचना भेजी, जिसके परिणामस्वरुप दतिया नरेश ने बाघाइट को उजाड़ने तथा दीवान गन्धर्व सिंह को दण्ड देने के लिए सेना भेजी। पारीछत रायसा में सैनिकों के सजने एवं सेना प्रयाण का बहुत विस्तृत और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है, किंतु बाघाइट कौ राइसौ में सेना तथा युद्ध के सामान का साधारण सा वर्णन किया गया है। सेना के प्रस्थान एवं पड़ाव के स्थानों की केवल सूचना भर कवि ने दे दी है। जबकि पारीछत रायसा में उनाव, बड़े गाँव, नौहट घाट आदि पर सेना के पड़ाव के साथ-साथ (उनाव में) दीवान दिलीप सिंह के स्नान, पूजा, शिकार आदि का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

'बाघाइट कौ राइसौ' में युद्ध की मारकाट का बहुत सूक्ष्म और साधारण वर्णन किया गया है। कवि ने घटनाओं की संक्षेप में सूचना देते हुए कथानक को समाप्त किया है। अत: स्पष्ट है कि महाराज पारीछत के जीवन की घटना विशेष पर आधारित 'बाघाइट कौ राइसौ' एक खण्ड काव्य है।

जिस प्रकार 'पादीछत रायसा' और 'बाघाइट कौ राइसौ' एक ही घटना पर लिखे गये दो काव्य हैं, ठीक उसी प्रकार प्रधान कल्याण सिंह कुड़राकृत 'झाँसी कौ राइसौ' तथा मदन मोहन द्विवेदी 'मदनेश' कृत 'लक्ष्मीबाई रासो की कथावस्तु एक ही चरित नायक के जीवन पर लिखे गये दो भिन्न भिन्न काव्य हैं।

वीर काव्यों का नायक किसी स्त्री पात्र का होना एक विलक्षण सी बात है। पर महारानी लक्ष्मीबाई के चरित्र में वे सभी विशेषतायें थीं, जो एक वीर योद्धा के लिए अपेक्षित थीं। प्रधान कल्याण सिंह कुड़रा तथा 'मदनेश' जी द्वारा लिखे

गए दोनों रायसे प्रबन्ध परम्परा में आत: हैं। दोनों में ही रानी लक्ष्मीबाई के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया गया है। अत: ये काव्य ग्रंथ खंड काव्य की कोटि के हैं। कल्याण सिंह कुड़रा कृत 'झाँसी कौ रायसौ' को श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव ने साहित्यिक प्रबंध बतलाया है। परंतु प्रधान कल्याण सिंह को प्रबन्ध निर्वाह में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि ग्रन्थारंभ में इन्होंने पहले गणेश सरस्वती आदि की वंदना के पश्चात् अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति की सूचना संकेतात्मक ढंग से दी है और इसको यहीं छोड़कर झाँसी की रानी और नत्थे खाँ प्रसंग प्रारंभ होता है, वहाँ से फिर कथा सूत्र में विचिछन्नता आ गई है। कवि ने झाँसी, कालपी, कांच तथा ग्वालियर के युद्धों के संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किये हैं। इन सबको पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि द्वारा इस ग्रंथ की रचना टुकड़ों में की गई है। इसी कारण कथा प्रवाह में एक सूत्रता नहीं रहने पाई। फिर भी 'झाँसी कौ राइसौ' का कथानक इतिहास प्रसिद्ध घटना पर आधारित है और इसमें यथा समभव प्रबन्ध निर्वा का प्रयास किया गया है।

'मदनेश' कृत 'लक्ष्मीबाई रासो' की कथा को सर्गो में विभाजित किया गया है। इसके प्रारम्भ के आठ सर्ग ही उपलब्ध हैं, जिनमें झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई तथा नत्थे खाँ के साथ हुए युद्धों का ही वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में वीरों, हथियारों, घोड़े, त्योंहारों, सेना, राजसी वैभव आदि के विस्तृत वर्णन के साथ ही साथ युद्ध की घटनाओं का भी अत्यन्त रोमांचकारी और विशद वर्णन किया है। 'मदनेश' जी की घटनाओं के संयोजन और प्रबन्ध निर्वाह में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है, परन्तु कतिपय स्थानों पर वीरों, हथियारों, जातियों आदि की लम्बी-लम्बी सूचियाँ गिनाने की परम्परा का अनुकरण करके इन्होंने कथा प्रवाह में शिथिलता भी उत्पन्न की है। कुल मिलकार 'लक्ष्मीबाई रासौ एक खण्ड काव्य है।

'पारीछत कौ कटक' कुछ कविताओं के रुप में और कुछ फुटकर छंदों के रुप में उपलब्ध हुआ है, जिनमें एक सूक्ष्म सा कथानक टुकड़ों में उपलब्ध होता है। कवि का उद्देश्य किसी कथानक की रचना का नहीं रहा होगा वरन् महाराज पारीछत की सेना, हाथियों आदि का वर्णन करना ही होगा। इसी प्रकार भग्गी दाऊजू 'श्याम' द्वारा रचित 'झाँसी कौ कटक' गीतों की एक खण्ड रचना है जिसमें महारानी लक्ष्मीबाई और उनके प्रमुख सरदारों के शौर्य की प्रशंसा तथा नत्थे खाँ के पक्ष के सैनिकों की हीनता का वर्णन किया गया है। 'भिलसांय कौ कटक' अपेक्षाकृत कुछ बड़ी रचना है तथा इसमें प्रबन्धात्मकता का निर्वाह किया

गया है। इस काव्य ग्रंथ में अजयगढ़ राज्य के दीवान केशरीसिंह और बाघेल वीर रणमत सिंह के मध्य हुए कुटरे के मैदान के एक युद्ध की घटा का वर्णन किया गया है।

छछूंदर रायसा ', 'गाडर रायसा' और 'घूस रायसा' में कथा प्रवाह है। 'छछूंदर रायसा' बहुत छोटी रचना है, फिर भी इससे एक छोटे से कथानक का निर्माण होता है।, 'गाडर रायसा' और 'घूस रायसा' दोनों में ही कथा योजना सुन्दर की गई है। तीनो हास्य रायसे प्रबन्ध रचनाओं की कोटि मं आते हैं। आकार की दृष्टि से छोटे होते हुए भी व्यंग्य की दृष्टि से ये हास्य रायसे बहुत महत्वपूर्ण हैं।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार यह कहा जा सकता है कि विवेच्य रासो काव्य मूलत: प्रबन्ध रचनायें हैं। इनके कथानक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर चुने गये हैं।

3

नीति काव्य

उचित समय और उचित स्थान पर उचित कार्य करने की कला को नीति कहते हैं। नीति, सोचसमझकर बनाये गये सिद्धान्तों की प्रणाली है, जो उचित निर्णय लेने और सम्यक परिणाम पाने में मदद करती है। नीति में अभिप्राय का स्पष्ट उल्लेख होता है। नीति को एक प्रक्रिया या नयाचार की तरह लागू किया जाता है।

भारतीय साहित्य में नीति काव्य का उद्‌भव

नीति काव्य का उद्‌भव विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से माना गया है। इसके साथ ही बाह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत में धर्म और नीति का सदुपदेश सम्मिलित है। इन नीति ग्रन्थों में तत्त्व ज्ञान और वैराग्य का सुन्दर सन्निवेश है। इनमें प्रायः सभी धार्मिक विश्वासों का उल्लेख और उपदेश है। इन नीति ग्रन्थों में लोक जीवन के व्यवहार में आने वाली बातों पर विचार करने के साथ ही साथ जीवन की असारता का निरूपण कर मानव मात्रा को 'मोक्ष' के साधन का उपदेश भी है। भारतीय नीति के अन्तर्गत धर्म एवं दर्शन भी समाहित हो जाते हैं इसीलिए नीति काव्य का उद्‌भव स्मृति ग्रन्थों से भी माना जाता है। महाभारत के दो बड़े प्रसगों की श्रीमद्‌भागवद्‌गीता एवं विदुरनीति तो स्वयं ही नीति काव्य के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भगवद्‌गीता तो भारतीय संस्कृति का अनमोल रत्न है जिसके माध्यम से हमें जीवन की असारता, आत्मा की

अमरता, निष्काम कर्मवाद आदि की शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार विदुर नीति में भी कुल धर्म, सर्व धर्म, राज धर्म, विश्व धर्म व आत्म धर्म के विविध स्वरूपों को देखा जा सकता है। निम्नलिखित श्लोक में सद्गृहस्थ के घर में चार लोगों का निवास आवश्यक बताया गया है –

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्म।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या॥

अर्थात् हे तात, गृहस्थ जीवन में, आप जैसे लक्ष्मीवान् के घर में चार जन सदा निवास करते रहें – कुटुम्ब का वृद्धजन, संकट में पड़ा हुआ उच्च कुल का व्यक्ति, निर्धन मित्र और निःसंतान बहन।

नीतिकाव्य का विकास

नीति काव्य का सर्वप्रथम संग्रह 'चाणक्य संग्रह' है। इसी को 'चाणक्य नीति' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें व्यवहार सम्बन्धी पद्यों के साथ राजनीति सम्बन्धी श्लोकों का सद्भाव भी प्राप्त होता है। इन नीति विषयक सदुपदेशों का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रख्यात गुरू अमात्य चाणक्य के साथ जुड़ा है, परन्तु यह स्पष्ट नहीं हो पाया कि इसका लेखक अर्थशास्त्र रचयिता चाणक्य ही है। हो सकता है कि चाणक्य के एक महनीय राजनीतिवेत्ता होने के कारण इसे 'चाणक्य नीति' के नाम से ख्याति मिली। डॉ लुडविक स्टर्नबाख ने 'चाणक्य नीति शाखा सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ में चाणक्य की नीति सूक्तियों की छः वाचनाओं का संग्रह सम्पादित तथा प्रकाशित किया है –

वृद्धचाणक्य (1–2 तक) दो वाचनाएँ–
चाणक्य नीति शास्त्र,
चाणक्य सार संग्रह
लघु चाणक्य,
चाणक्य राजनीति शास्त्र

वृद्ध चाणक्य–इसके अन्तर्गत दो वाचनाएं हैं–प्रथम को सामान्य वाचना तथा द्वितीय का अलंकृत वाचना कहा गया है। प्रथम वाचना में आठ अध्याय है तथां द्वितीय वाचना में सत्रह अध्याय हैं। श्लोक प्रायः अनुष्टप छन्द में है।

चाणक्य नीतिशास्त्र–तृतीय वाचना का नाम चाणक्य नीतिशास्त्र है, इसकी अवतरणिका में इसे नाना प्रकार के शास्त्रों से उद्धृत राजनीति का समुच्चय तथा समस्त शास्त्रों का बीज बताया गया है।

नाना शास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम्।
सर्वबीजमिदं शास्त्रं चाणक्यं सारसंग्रहम्॥

इसमें अनुष्टुप छन्द में निबद्ध 108 श्लोक हैं।

चाणक्यसार संग्रह

इसमें तीन शतक हैं। प्रत्येक शतक में पूरे एक सौ अनुष्टुप विद्यमान है। इसमें राजनीति के विस्तृत उपदेशों के साथ ही साथ लोक नीति की भी सुन्दर शिक्षा दी गई है–

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां संगो गंगारम्भः शम्भु सेवनम्॥

उपर्युक्त श्लोक में काशी वास को प्राथमिकता दी गई है। हो सकता है कि इसका संग्रहकर्ता कोई काशीवासी हो।

लघु चाणक्य

पंचम वाचना लघु चाणक्य नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक अध्याय में 10 से 13 तक श्लोक हैं। यह वाचना भारत में अल्पज्ञात ही रही परन्तु यूरोप में यह काफी प्रख्यात रही। गेल नेस नामक यूनानी संस्कृतज्ञ ने मूल संस्कृत का यूनानी भाषा में अनुवाद करके 1825 ई0 में इसे प्रकाशित किया।

चाणक्य राजनीति शास्त्र

यह वाचना भी भारत में प्रसिद्ध नहीं हुई अपितु नवम शताब्दी में तिब्बती तंज–में अनुदित होकर संग्रहीत हुई। इस तिब्बती अनुवाद का पुनः संस्कृत में अनुवाद शान्ति निकेतन से प्रकाशित हुआ है। इसमें 8 अध्याय हैं तथा 5382 श्लोक हैं, परन्तु 3972 श्लोक ही उपलब्ध हैं।

यह कहना अति कठिन है कि इन सभी ग्रन्थों के रचयिता महात्मा चाणक्य ही थे परन्तु इन ग्रन्थों में दी गई शिक्षा, उपदेश व नीति वाक्य मानव जीवन के लिए सर्वथा उपादेय हैं–सार्वभौम हैं तथा इनमें अनुभव एवं बुद्धि की सूक्ष्माभिव्यक्ति हुई है। यथा –

नास्ति विद्यासमं चक्षुनास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥

अर्थात् विद्या के समान नेत्र नहीं है, सत्य के समान तप नहीं है, राग के समान अन्य कोई दु:ख नहीं है तथा त्याग के समान अन्य कोई सुख नहीं है।

नात्यन्त सरलैभाव्यं गत्वा पश्य वनस्थली।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपा:।।

अर्थात् अत्यन्त सरल (सीधा) नहीं होना चाहिए। यह कथन कितना सटीक है क्योंकि यदि हम वन में जाकर देखते हैं तो ज्ञात होता है कि सीधे वृक्ष तो लोगों द्वारा काट दिए जाते हैं, परन्तु टेढे मेढे वृक्ष नहीं काटे जाते।

भाव यह है कि संसार में छद्म प्रवृति के लोगों के द्वारा प्राय: सीधे सादे लोग शोषित ही होते हैं।

नीतिद्विषष्ठिका

सुन्दर पाण्डे द्वारा रचित नीतिद्विषष्ठिका ही नीति विषय प्राचीन ग्रन्थ है जिसके विषय में हमें निश्चित जानकारियां मिलती है। इसमें उपदेशात्मक शैली में 116 श्लोक है। सुभाषित ग्रन्थकारों ने इस रचना के कई श्लोक उद्धृत किये हैं, परन्तु ग्रन्थ का नामोल्लेख नहीं किया है। परन्तु कुछ अन्य विद्वानों ने इनका उल्लेख किया है जिसका विवरण निम्नलिखित है–

1. जनाश्रय (600 ई0) ने इसकी एक पंक्ति अपने छन्दोविचित में उदधृत की है।
2. कुमारिल (650 ई0) एवं शंकराचार्य ने उनके अन्य ग्रन्थों के भी श्लोक उद्धृत किये हैं।
3. बोधिचर्यावतार – शांतिदेव जिनका समय 600 ई0 के लगभग है, द्वारा रचित बोधिचर्यावतार ग्रन्थ भी नीतिकाव्य है। इसमे बोधिसत्व (ज्ञानप्राप्ति के इच्छुक) के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। मानव मात्राा से प्रेम करने के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। इस ग्रन्थ पर कई टीकाएं भी लिखी गई। शांतिदेव ने 6 शिक्षा समुच्चय व सूत्र समुच्चय भी लिखे परन्तु ये रचनाएं कम प्रसिद्ध हुई।

नीति शतक

भर्तृहरि विरचित नीति शतक, नीति काव्यों में श्रेष्ठ स्थान रखता है। इन पद्यों में उन्होने अपने लौकिक व्यावहारिक ज्ञान का सूक्ष्म परिचय देते हुए अपने

अनुभवों को अत्यन्त सहज, सरल, स्वाभाविक एवं सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया है। मानव जीवन से सम्बन्धित ऐसा कोई भी विषय, कोई भी समस्या नहीं है जिसकी चर्चा इस ग्रन्थ में न की गई हो उनकी दृष्टि में सच्चा मानव वही है, जो अपने मन में परम संतोष की अनुभूति करता हो। वे एक ओर तो कर्म सिद्धान्त की वकालत करते हैं तो दूसरी और भाग्य को भी अनदेखा नहीं करते हैं। कुछ विषयों पर उनकी धारणा आज भी सत्य प्रतीत होती है। यथा – इस संसार में सभी का उपचार संभव है, परन्तु मूर्ख का नहीं।

सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।

विवेक का परित्याग करने वालों का पतन सैकड़ो प्रकार से होता है। यथा – विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः

शरीर को आभूषण नहीं सुसज्जित करते अपितु सुसस्कृत वाणी ही असली आभूषण है –

वाण्येकाष् समलंकरोति पुरूषं या संस्कृतार्धायते
क्षीयन्ते खलुभूषणानि सततंवाग्भूषणं भूषणम्।

मानवीय व्यवहारों और प्रवृतियों और सदाचार का भर्तृहरि ने इतना सूक्ष्म और व्यापक अध्ययन किया कि उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। इन तत्त्वों को कवि ने आत्मसात् किया था और स्वयं के जीवन में उनका आचरण किया था। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में उनके नीति वचनों का एवं साहित्य में उनके नीतिवचनों का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ। शब्द रचना, अलंकार विधान, छन्दों की विरचना आदि सभी दृष्टियों से यह शतक परिपुष्ट है।

वैराग्य शतक

वैराग्य शतक उत्कृष्ट शैली में लिखा गया नीति काव्य है। इसमें इस शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है कि मनुष्यो में साधारणतः होने वाले दुर्गुणों को केसे दूर किया जाए–

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एकोति निश्चलः।

इसमें शिव भक्ति पर बल देते हुए संन्यास की प्रशंसा की गई है –

कदा संसार जालान्तर्बद्धं त्रिगुणारार्ज्जुभिः
आत्मानं मोचयिष्यामि शिवभक्तिशलाकया।

मोहमुद्गर

यह रचना आदि शंकराचार्य द्वारा विरचित मानी गई है। इसमें सांसारिक विषय को छोड़ने और मायाजाल से मुक्त होने का उपदेश दिया गया है। इसमें नैतिक और दार्शनिक भाव हैं।

कुट्ट्नीमत

कश्मीर के राजा जयापीड (779 - 813 ई0) के आश्रित एवं अमात्य कवि दामोदर गुप्त द्वारा विरचित कुट्टनीमत भी समाज को शिक्षा देने वाला नीति काव्य है। इसे वेश्याओं का शिक्षा ग्रन्थ भी कह सकते हैं।

आर्याछन्द में निबद्ध यह काव्य अपनी मधुरता तथा स्निग्धता के कारण संस्कृत साहित्य में चिरस्मणीय रहेगा। प्रस्तुत श्लोक में वेश्याओं की तुलना चुम्बक से की गई है -

परमार्थ कठोरा अपि विषयगतं लोहकं मनुष्यं च
चुम्बक पाषाणशिलारूपाजीवाश्च कर्षन्ति।

अर्थात् जिस प्रकार चुम्बक पत्थर अपनी पहुँच में आये हुए लोहे को अपनी और खींचता है उसी प्रकार रूप से जीविका प्राप्त करने वाली वेश्याएं विषयो में आसक्त मनुष्यों को अनिवार्य रूप से खींचती हैं।

सुभाषितरत्नसन्दोह

जैन लेखक अमित गति ने 994 ई0 में सुभाषितरत्नसन्दोह रचना रची। इसमें 32 अध्याय हैं। इसमें जैन साधुओं, देवताओं और हिन्दुओं के व्यवहारों पर कटु आक्षेप हैं।

धर्मपरीक्षा

यह रचना भी अमित गति जी की है। उन्होने इस रचना में हिन्दू धर्म की अपेक्षा जैन धर्म को उत्कृष्ट बताया है।

भर्मो रक्षित रक्षितः।

कला विलास

महाकवि क्षेमेन्द्र (1050 ई0) ने अपनी तीव्र निरीक्षण शक्ति के द्वारा तत्कालीन समाज व धर्म का अनुशीलन कर नीतिपरक रचनाएं रची जिनमें से

से कला विलास प्रमुख स्थान रखता है। इसमें 10 अध्याय हैं। क्षेमेन्द्र ने इसमे जनता द्वारा अपनाए गए आजीविका के विभिन्न साधनों (कलाओं) का वर्णन किया है। ये कलायें अनेक रूप धारण कर मानवों को ठगती हैं। अतएव इनकी पूरी जानकारी एवं बचने के उपाय इस काव्य में हैं। कला विकास के अतिरिक्त क्षेमेन्द्र की अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं - दर्पदलन, चारुचर्या, चतुर्वर्गसग्रह, सेव्यसेवकोपदेश, समयमातृका, देशोपदेश।

दर्पदलन

इसमें सात अध्याय हैं, जिसमें कवि ने उच्च कुल, धन, विद्या तथा सौन्दर्य, साहस दान तथा तपस्या से उत्पन्न तप की निःसारता दिखाई है। यथा–

कुलं कितं श्रुतं शौर्य दानं तपस्तथा।
प्राधान्येन मनुष्याणां सप्तैत में नहेतवः।

इसमें सात विचार हैं जिनके आरम्भ में तद्विषयक उपदेशात्मक सूक्तियाँ तथा उनकी उपादेयता स्पष्ट करने हेतु प्रधान पात्र द्वारा नीतियों का महत्व स्पष्टतः दर्शाया गया है।

चारूचर्या

यह सदाचार विषयक शतक है। इसके माध्यम से कवि ने सुन्दर व्यवहार हेतु आवश्यक नियमों (नीतियों) का वर्णन किया है।

चतुर्वर्गसंग्रह

यह पुरूषार्थ चतुष्टय का विवरण देने वाला काव्य है। इसमें चार परिच्छेद हैं जिनमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्रशंसा निविष्ट की गई है।

सेव्यसेवकोपदेश

क्षेमेन्द्र ने इसमें सेवक की दीन दशा एवं स्वामिजनों द्वारा किए जाने वाले दुर्व्यवहारों का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है। इय के कुल 61 श्लोक हैं। अनेकों छन्दो में निबद्ध इस काव्य की शैली प्रसादमयी है।

समयमातृका

इसमें आठ अध्याय हैं। इसमें वेश्याओं के प्रपंचों का वर्णन है। इसमें वेश्याओं के जाल से बचने की शिक्षा दी गई है।

देशोपदेश

इसमें तथा 'नर्ममाला' में कवि ने हास्योपदेश के रूप में नीति परक उपदेश दिये हैं। देशोपदेश में आठ उपदेश हैं। कवि का प्रधान लक्ष्य है कि हास से लज्जित होकर कोई भी पुरूष दोषों में प्रवृत नहीं होगा –

हासेन लज्जितोउत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते
जनस्तदुपकाराय ममायं स्वमुद्यमः।

नर्ममाला

इसमें तीन परिच्छेद हैं।

योगशास्त्र

जैन कवि हेमचन्द्र (1088– 1172 ई0) ने इस रचना में जैनों के कर्तव्यों तथा जैन साधुओं द्वारा अपनाये जाने वाले कठोर नियमों का वर्णन किया गया है।

मुग्धोपदेश

कवि जल्हण (1130 ई0) के इस रचना में वेश्याओं के छल प्रपंच से बचने की शिक्षा दी गई है।

शान्तिशतक

शिल्हण (1205 ई0) द्वारा रचित इस शतक में मानसिक शान्ति की प्राप्ति के लिए विशेष बल दिया है। इस रचना पर भर्तृहरि विरचित नीति शतक वैराग्य शतक का प्रभाव स्पष्टतः झलकता है।

शृंगार वैराग्यतरंगिणी

सोमप्रभ ने 1267 ई0 में यह रचना रची। इसमें स्त्रियों के संसर्ग से हानियां व वैराग्य के लाभों को बताया गया है।

सुभाषित नीवी

वेदान्तदेशिक (1268– 1269 ई0) द्वारा रचित इस रचना में 145 सुभाषित श्लोकों का संग्रह है। यह रचना भर्तृहरि के नीतिशतक से पूर्णतः

प्रभावित है। इसके साथ ही इस कवि ने श्वैराग्य पंचक' नामक रचना भी रची है।

दृष्टान्तकलिकाशतम्

कवि कुसुम देव द्वारा रचित यह काव्य अनुष्टप छन्द में रचित है। वल्लभ देव (1500 ई0) ने इस कवि का उल्लेख किया है। अतः कुसुमदेव का काल इस समय से पूर्व का ही है। इस काल के पूर्वाध में नीति कथन है तथा उत्तरार्ध में उसकी पुष्टि दृष्टान्त द्वारा की है।

नीति मंजरी

द्यद्विवेद ने 1492 ई0 में 'नीति मंजरी' की रचना की। इसमें वृद्ध देवता आदि प्राचीन ग्रन्थों के उदाहरणों के माध्यम से उपदेश दिया गया है। कतिपय स्थलों पर वेद मन्त्रों की व्याख्या भी की है।

भामिनी विलास

पण्डितराज जगन्नाथ (1590 - 1665 ई) द्वारा रचित भामिनी विलास में क्रमशः चार भाग हैं - अन्योक्ति, शृंगार, करूण और शान्त। इनमें क्रमशः 101, 100, 19 और 32 श्लोक हैं। पण्डितराज पाण्डित्य के पारा प्रवीण हैं। स्थान-स्थान पद काव्य सौन्दर्य, अलंकृत पदावली, भाव सौन्दर्य, रस प्रवणता, ज्ञानगरिमा और हृदयग्राहिता का दर्शन होता है। यथा -

सपदिविलयेतु राज्यलक्ष्मीरूपरि पतन्त्वथवा कृपाण धारा
अपद्दरतुतरां शिरः कृतान्तो में तु मतिर्न मनागपैतु धर्मात्।

अर्थात चाहे राज्यलक्ष्मी चली जाए, चाहे तलवार की चोट सहनी पड़े, चाहे मृत्यु आ जाए, परन्तु मन कभी भी धर्म का परित्याग न करे।

कलि विडम्बन

नीलकण्ठ दीक्षित (1630 ई0) ने चार रचनाएं रची। जिनमें प्रथम कलि विडम्बन है। इसमें कलियुग की विडम्बना का उत्कृष्ट चित्रण है। यह एक वयंग्यप्रधान काव्य है। यथा -

यत्र भार्यागिरो वेदाः यत्र धर्मोऽर्थसाधनम्
यत्र स्वप्रतिभा मौनं तस्मै श्रीकलये नमः

सभारजनशतक

नीलकण्ठ दीक्षित जी की अन्य कृति इस शतक में यह बताया गया है कि किस प्रकार विद्वन्मण्डली को तथा राज्य सभा के व्यक्तियों को प्रसन्न करना चाहिए।

शान्ति विलास

दीक्षित जी की तृतीय कृति शान्ति विलास में 51 श्लोक हैं, जो मन्दाक्रान्ता छन्द में विरचित हैं। इस काव्य में भौतिक जीवन की अनित्यता का चित्रण बड़े ही रोचक ढंग से किया गया है। साथ ही मोक्ष प्राप्ति हेतु शिव से प्रार्थना भी की गई है।

वैराग्य शतक

दीक्षित जी की चतुर्थ कृति वैराग्य शतक में वैराग्य पूर्ण जीवन व्यतीत करने के अनेकानेक लाभ बताये गए हैं।

उपदेश शतक

अल्मोड़ा निवासी पर्वतीय कवि जिनका समय 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है, ने उपदेश शतक नामक काव्य आर्या छन्द में रचा है। इसके जनोपयोगी उपदेश स्वरूप 100 श्लोक हैं।

सुभाषित कौस्तुभ

वे कटाध्वरी (1650 ई0) रचित प्रस्तुत काव्य भी उपदेशात्मक शैली में रचित नीति काव्य है।

लोकोक्ति मुक्तावली

दक्षिणा मूर्ति नामक कवि द्वारा रचित यह काव्य नाना छन्दो में निबद्ध है। इसमें 94 श्लोक हैं जिनमें विद्वत्प्रशंसा, दुर्जन, त्याग, द्वैत निन्दा, शिक्षा पद्वति, विषाद पद्धति तथा ज्ञान पद्धति में वर्ण्य-विषय का विभाजन है।

हिन्दी का नीतिसाहित्य

हिन्दी साहित्य में भी नीति काव्य खूब लिखा गया है। तुलसीदास, रहीम आदि के नीति के दोहे प्रसिद्ध हैं-

धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपद काल परखिए चारी।। (तुलसीदास)

कह रहीम कैसे निभै बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग।। (रहीम)
चलती चाकी देखि के दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।। (कबीरदास)

रहीम के नीति काव्य की प्रासंगिकता

नीति लोक व्यवहार का ढंग या तरीका है जिसके अनुसार जीवन चर्या का संचालन होता है। डॉ. रामस्वरूप शास्त्री 'रसिकेश' ने 'उचित व्यवहार का नाम नीति कहा है। नीति शब्द से हम भलीभाँति परिचित हैं- चाणक्य नीति, विदुर नीति, राजनीति आदि के विषय में जानते हैं। 'नीति' को अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है। डॉ. भोलानाथ तिवारी नीति के विषय में कहते हैं कि- ''समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति कराने के लिए जिन विधि या

निषेधमूलक वैयक्तिक और सामाजिक नियमों का विधान देश, काल और परिस्थिति के संदर्भ में किया जाता है, उन्हें नीति शब्द से अभिहित करते हैं।''

उन्होंने माना है कि नीति कुछ नियम हैं, जिनका पालन प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। नीति पालन समष्टि के लिए आवश्यक है। नीति व्यष्टि के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। डॉ. बालकृष्ण अकिंचन नीति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि ''जब हम भी नीति को ऐसा ही मार्ग, रीति या कला समझते हैं, जिस पर चलकर दैनिक जीवन में आदर्श सफलता प्राप्त की जा सकती है। आदर्श सफलता से तात्पर्य उस सफलता से है, जो कौशल, चरित्र, अनुभव, योग्यता अथवा दूरदर्शिता के बल पर किसी समाज अथवा व्यक्ति को हानि पहुँचाए बिना प्राप्त की गई हो'' अर्थात् यह कहा जा सकता है कि नीति मनुष्य जीवन में अपना अहम् स्थान रखती है। समष्टि और व्यष्टि में नीति के पालन के बिना अनाचार, अशांति का बोलबाला है। मनुष्य आज के इस बाजारवादी, युग में आगे बढ़ने के लिए, अपने स्वार्थों को परिपूर्ण करने के लिए अनीतिपूर्ण कार्य करने से नहीं हिचकता। दूसरे का अहित करने में वह दिन-रात लगा रहता है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु वह अनीतिपूर्ण मार्ग पर चलता है। ऐसे में वह मनुष्य परिवार, समाज, देश गर्त की ओर ही जाता है। ऐसे में आज मनुष्य को एक बार

दोबारा सार्वभौमिक, सार्वकालिक, नीति को समझना चाहिए। हिंदी साहित्य नीति कथनों से ओत-प्रोत है।

हिंदी साहित्य के पूर्वमध्यकाल (संवत् 1050 से 1375 संवत) को 'भक्तिकाल' की संज्ञा दी गई है। भक्तिकाल के नीतिकाव्यधारा के अनन्य कवि रहीम हैं। भक्तिकाल के नीतिकाव्यधारा के आधार स्तम्भ उनके नीति विषयक दोहे हैं, जो अपनी सरलता, भावप्रवणता के कारण मनुष्य के हृदय में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। रहीम के व्यक्तित्त्व के संदर्भ में रहीम दोहावली में अभिव्यक्त है- ''एक ऐसा व्यक्तित्त्व जो अनुभव का भरा हुआ प्याला हो और छलकने के लिए लालायित हो, मूल के कुल के हिसाब से विदेशी पर हिन्दुस्तान की मिट्टी का ऐसा नमकहलाल कि उसने अपना मस्तिष्क चाहे अरबी, फारसी, तुर्की को दिखा हो, पर हृदय ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली और संस्कृत को ही दिया। सारा जीवन राजकाज में बीता और बात उसने की आम आदमी के जीवन की''। रहीम की रचनाओं में दोहावली, नगर-शोभा, बरवै नायिका भेद, बरवै, श्रृंगार सोरठा, मदनाष्टक, फुटकर पद संस्कृत श्लोक, खेल कौतुक जातकम् हैं। इसके अतिरिक्त फारसी में बाकेआट बाबरी, फारसी दीवान है, जो आज अप्राप्य है। नीतिकाव्य की दृष्टि, दोहावली उनकी प्रमुख रचना है जिसके अन्तर्गत नीति अनुभवों से पिरोये हुए नीति कथन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

मित्रता एक विश्वास की डोर से बंधी होती है। मित्रता के बल पर ही मनुष्य बड़ी से बड़ी बाधाओं को पार कर सकता है। जीवन में मित्रता अमूल्य धन है। हर मनुष्य के जीवन में अनेक मित्र होते हैं, वे हमारे सच्चे मित्र हैं, इस बात की परीक्षा विपत्ति के समय हो जाती है। रहीम भी मित्रता के महत्त्व से अनभिज्ञ नहीं थे। वे मानते हैं विपत्ति ही मित्रों की कसौटी है। वह थोड़े दिनों के लिए आती हैं, परन्तु यह बता जाती है कि कौन मित्र है और कौन शत्रु-

''रहिमन बिपदा हूँ भली, जो थोड़े दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय''॥

रहीम अन्यत्र कहते हैं कि जब मनुष्य के पास धान-सम्पत्ति होती है, तब उसके अनेक सगे-सम्बन्धी बन जाते हैं। प्रकृति का तो यह नियम है कि उगते हुए सूरज को सलाम करते हैं। उन सगे-संबंधियों, मित्रों की परीक्षा तो विपत्ति में भी साथ बनाए रखने पर ही होती है, वे ही जीवन के सच्चे मित्र होते हैं।

''कहि रहीम सम्पत्ति सगे, बनत बहुत बहुत रीति।
बिपत्ति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत॥''

दुष्ट व्यक्ति से सदैव दूर रहना चाहिए। दुष्ट व्यक्ति अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ता। रहीम दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि चाहे लाख भलाई कर लो, परन्तु दुष्ट व्यक्ति अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता। रहीम आगे कहते हैं कि राग सुनते हुए और दूध पीते हुए भी साँप राग सुनाने वाले को और दूध पिलाने वाले को अपने दुष्ट स्वभाव के कारण डस ही लेता है–

''रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूँ, साँप सहज धार खाय॥''

दुष्ट व्यक्ति के संबंध में वृन्द भी इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि दुष्ट व्यक्ति कभी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। काजल को सौ बार धोने पर भी वह सफेद नहीं हो सकता–

''दुष्ट न छाड़े दुष्टता, कैसेहूँ दुख देत।
धोये हूँ सौ बेर के, काजर होय न सेत॥''

दुष्ट व्यक्ति का बुरा स्वभाव कभी नहीं बदलता। कवि गंग भी इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं कि यदि लहसुन की डली को कपूर के पानी में पचासों बार धोया जाए, फिर केसर के लेप में डुबोकर चंदन के वृक्ष के नीचे सुखाया जाए, तब भी लहसुन की डली की गंध समाप्त नहीं होती–

लहसुन गांठ कपूर के नीर में, बार पचासक धोई मंगाई।
केसर के पुट दै दै के फेरि, सु चंदन वृच्छ की छाँह सुखाई।
मोगरे मांहि लपेटि धारी गंग, बास सुबास न अल न आई।
ऐसीह नीच को ऊँच की संगति, कोटि करौ बैं कुटेन न जाई॥

रहीम मधुर बचनों के महत्त्व और कटु वचनों के त्याग पर बल देते हैं। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने स्वयं अपने जीवन पर कभी क्रोध नहीं किया। वे मानते हैं कि खीरे की कड़वाहट को दूर करने के लिए उसे सिरे से काटकर, उस पर नमक मलते हैं। इसी प्रकार कड़वा वचन बोलने वाले व्यक्ति की भी यही सजा होनी चाहिए–

''खीरा सिर ते काटिए, मलियत नमक लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय॥''

कटु वचन बोलने वाले का क्या परिणाम होता है, इस विषय में रहीम कहते हैं कि पागल जीभ तो अनाप–सनाप कहकर भीतर चली गई, परन्तु इसी अनाप–शनाप, बकवास बोलने के कारण सिर को जूते खाने पड़ते हैं–

''रहिमन जिह् वा बावरी, कहि गई सरग-पाताल।
आयु तौ कही भीतर रही, जूती खात कपाल॥''

प्रेम का मनुष्य जीवन में अहम स्थान है। प्रेम के बिना मनुष्य का जीवन नीरस है। टकराव के कारण मनुष्य अपने संबंधियों को छोड़ नहीं देता। अतः मनुष्य को टूटे सम्बन्धों को जोड़ने का प्रयास करते रहना चाहिए। रहीम कहते हैं कि जिस प्रकार मोतियों के हार के टूटने पर, उसे बार-बार पिरो दिया जाता है, उसी प्रकार रूठे हुए संबंधी को, मित्र को भी मना लेना चाहिए-

''टूटे सजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोहिये, टूटे मुक्ताहार॥''

प्रेम के विषय में रहीम अन्यत्र कहते हैं कि प्रेम को बनाए रखने के लिए संबंधियों से दूरी बनाए रखने में ही समझदारी है। ज्यादा निकट बने रहने से प्रेम का उसी प्रकार निरादर होता है, जैसे जिस प्रकार छोटे गड्ढे के पानी को निकट होने पर कोई आदर नहीं देता, पानी नहीं पीता-

''नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जाति।
निकट निरादर होत है, ज्यौं गड्ही को पानि॥''

दान का अर्थ है देना। हर धर्म में दान का महत्त्व वर्णित है। दान सदैव सुपात्र को देना चाहिए। रहीम स्वयं दानी थे। रहीम की दृष्टि में माँगना मौत के बराबर है, परन्तु जो मनुष्य होते हुए भी दान नहीं करता, वह सबसे बड़ा पापी है। जिन दानियों के मुख से नहीं निकलता है, वे माँगने वाले से पहले मर गए हैं-

''रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ मांगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥''

रहीम आगे कहते हैं कि माँगने से मनुष्य का सम्मान समाप्त हो जाता है, बड़ा व्यक्ति छोटा हो जाता है। जैसे- बलि से तीन डग पृथ्वी का दान माँगने पर भगवान विष्णु को भी बामन अवतार लेना पड़ा था-

''रहिमन याचकता गहे, बड़ो छोट हुँ जात।
नारायन हूँ को भयो, बावन अंगुर गात॥''

भाग्य की प्रबलता का महत्व संपूर्ण विश्व में असंदिग्धा है। मनुष्य केवल कर्म कर सकता है, कर्मफल उसके हाथ में नहीं है। जिस प्रकार कठपुतली अदृश्य हाथों द्वारा संचालित होती है, उसी प्रकार मनुष्य का भी भाग्य है, वशीभूत होकर कार्य करता है-

''ज्यों नाचत कठपुतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ॥''

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रहीम के नीति विषयक दोहे समष्टि और व्यष्टि को ज्ञान का मार्ग, न्याय का मार्ग दिखलाते हैं। वे दोनों नीति मार्ग पर चलकर एक आदर्श सफलता प्राप्त कर सकते हैं। आज इन दोहों की उपादेयता और बढ़ गई है, क्योंकि हर मनुष्य आज अपने जीवन की समस्याओं से घिरा हुआ है और उनके समाधान हेतु वह अनैतिक मार्ग पर चलने से भी नहीं हिचक रहा। वो नीति विषयक दोहे उसका मार्ग प्रदर्शन करते हैं। रहीम के नीति काव्य में प्रेम, मित्रता, दुर्जन, कटुवचन, भाग्य, चिंता, महानता, स्वार्थ आदि अनेक विषयों पर दोहे मिलते हैं। ये दोहे अपनी सादगी, प्रभावमयता, भावप्रवणता के कारण मनुष्य को कंठस्थ भी हैं। शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने रहीम का एक भी नीति-राग न सुना हो।

4

भक्ति काव्य

भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के मध्यकाल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता को भक्ति आन्दोलन के रूप में पहचाना जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में यह भक्ति काव्य के विराट रस श्रोत के रूप में प्रकट हुआ।

भक्ति काव्य का स्वरूप

भक्ति काव्य का स्वरूप अखिल भारतीय था। दक्षिण भारत में दार्शनिक सिद्धांतों के ठोस आधार से समृद्ध होकर भक्ति उत्तर भारत में एक आंदोलन के रूप में फैल गयी। इसका प्रभाव कला, लोक व्यवहार आदि जीवन के समस्त क्षेत्रों पर पड़ा। कबीर, जायसी, मीरा, सूर, तुलसी आदि कवियों के साथ रामानंद, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य आदि आचार्यों के सिद्धांतों में भक्ति के इसी स्वरूप के दर्शन होते हैं।

भक्ति काव्य के भेद

भक्ति काव्य के प्रधानत: दो भेद हैं निर्गुण और सगुण भक्ति काव्य। निर्गुण भक्ति काव्य की दो शाखाएं हैं ज्ञानमार्गी जिसके प्रतिनिधि कवि कबीर हैं और प्रेम मार्गी जिसके प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं। सगुण भक्ति काव्य की भी दो शाखाएं हैं। कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा। इनके प्रतिनिधि

कवि क्रमशः सूर और तुलसी दास हैं। इसके अतिरिक्त शैव, शाक्त, सिद्ध, नाथ जैन आदि कवि भी इस काल में रचना करते थे।

भक्ति काल

भक्ति काल अपना एक अहम और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को पूर्व मध्यकाल भी कहा जाता है। जिसकी समयावधि संवत् 1325ई से संवत् 1650ई तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य(साहित्यिक दो प्रकार के हैं- धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य) का श्रेष्ठ युग है। जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्णकाल, श्यामसुन्दर दास ने स्वर्णयुग, आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने भक्ति काल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढे-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया:

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

इसके उपरांत माधव तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के

योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गई।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं–

1. सगुण भक्ति
2. रामाश्रयी शाखा
3. कृष्णाश्रयी शाखा
4. निर्गुण भक्ति
5. ज्ञानाश्रयी शाखा
6. प्रेमाश्रयी शाखा
7. संत कवि।

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों का परिचयकबीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी के रूप में मिलता हैं।

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँचनीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों – कबीर और तुलसी को

इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए – ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ – रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणलियों की अपनी अलग अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्रा की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर निर्गुणोपासक कबीर भी अने राम को प्रिय, पिता और स्वामी आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी

भक्तों ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कुठाराघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में ख्यापित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधा ना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरु या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यत: यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं1 इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंझन, उसमान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्त्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यत: सखायभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्टी संप्र.), गदाधर भट्ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वत:स्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोतिल करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान के मधुर रूप का उद्घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का

स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्त्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है, जो मानवीय सामर्थ्य और उदात्त की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करता है। उसमें भगवान राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसकी धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

कृष्णाश्रयी शाखा

इस गुण की इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार हुआ है। विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के

अंतर्गत अष्टछाप के सूरदास, कुम्भनदास, रसखान जैसे महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवंशृंगार के सर्वोत्तम भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का ही प्राधान्य रहा है। प्रायः सब कवि गायक थे इसलिए कविता और संगीत का अद्‌भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। गीति-काव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी उसका चरम-विकास इन कवियों द्वारा हुआ है। नर-नारी की साधारण प्रेम-लीलाओं को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेमलीला द्वारा व्यंजित करके उन्होंने जन-मानस को रसाप्लावित कर दिया। आनंद की एक लहर देश भर में दौड गई। इस शाखा के प्रमुख कवि थे सूरदास, नंददास, मीरा बाई, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, नरोत्तमदास वगैरह। रहीम भी इसी समय हुए।

कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य-धारा के मुख्य प्रवर्तक हैं- श्री वल्लभाचार्य। उन्होंने निम्बार्क, माधव और विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर श्रीकृष्ण का प्रचार किया। श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। जिसका अर्थ है- भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति से उनकी कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति करना।

कृष्ण-काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. श्रीकृष्ण-साहित्य का मुख्य विषय कृष्ण की लीलाओं का गान करना है। वल्लभाचार्य के सिद्धांतो से प्रभावित होकर इस शाखा के कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का ही अधिक वर्णन किया है। सूरदास इसमें प्रमुख है।
2. इस शाखा में वात्सल्य एवं माधुर्य भाव का ही प्राधान्य है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं तथा माँ यशोदा के हृदय की झाँकी मिलती है। माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला मुख्य है। सूरदास के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- वात्सल्य के क्षेत्र में जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, इतना किसी ओर कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का तो वे कोना-कोना झाँक आये।

3. इस धारा के कवियों ने भगवान कृष्ण की उपासना माधुर्य एवं सख्य भाव से की है। इसीलिए इसमें मर्यादा का चित्रण नहीं मिलता।
4. श्रीकृष्ण काव्य में मुक्त रचनाएँ ही अधिक पाई जाती हैं। काव्य-रचना के अधिकांशत: उन्होंने पद ही चुने हैं।
5. इस काव्य में गीति-काव्य की मनोहारिणी छटा है। इसका कारण है- कृष्ण-काय की संगीतात्मकता। कृष्ण-काव्य में राग-रागिनियों का सुंदर उपयोग हुआ है।
6. श्रीकृष्ण काव्य में विषय की एकता होने के कारण भावों में अधिकतर एकरूपता पाई जाती है।
7. श्रीकृष्ण को भगवान मानकर पदों की विनयावली द्वारा पूजे जाने के कारण इसमें भावुकता की तीव्रता अधिक पाई जाती है।
8. इस काव्य-धारा में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
9. कृष्ण-काव्य-धारा की भाषा ब्रज है। ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली का प्रयोग इसमें हुआ है। यह मधुर और सरस है।
10. इस काव्य में रसमयी उक्तियों के लिए तथा साकार ईश्वर के प्रतिपादन के लिए भ्रमरगीत लिखने की परंपरा प्राप्त होती है।
11. श्रीकृष्ण-काव्य स्वतंत्र प्रेम-प्रधान काव्य है। इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाया है। इसलिए इसमें मर्यादा की अवहेलना की गई है।
12. कृष्ण-काव्य व्यंग्यात्मक है। इसमें उपालंभ की प्रधानता है। सूर का भ्रमरगीत इसका सुंदर उदाहरण है।
13. श्रीकृष्ण काव्य में लोक-जीवन के प्रति उपेक्षा की भावना पाई जाती है। इसका मुख्य कारण है- कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता।
14. श्री कृष्ण-काव्य-धारा में ज्ञान और कर्म के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई है। इसमें आत्म-चिंतन की अपेक्षा आत्म-समर्पण का महत्व है।
15. प्रकृति-वर्णन भी इस धारा में मिलता है। ग्राम्य-प्रकृति के सुंदर चित्र इसमें हैं।

रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा-पुरुषोत्तम का ध्यान करना

चाहा। इसलिए आपने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरित मानस' द्वारा राम-कथा को घर-घर में पहुंचा दिया। तुलसीदास हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। समन्वयवादी तुलसीदास में लोकनायक के सब गुण मौजूद थे। आपकी पावन और मधुर वाणी ने जनता के तमाम स्तरों को राममय कर दिया। उस समय प्रचलित तमाम भाषाओं और छंदों में आपने रामकथा लिख दी। जन-समाज के उत्थान में आपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस शाखा में अन्य कोई कवि तुलसीदास के समन उल्लेखनीय नहीं है तथापि अग्रदास, नाभादास तथा प्राण चन्द चौहान भी इस श्रेणी में आते हैं।

रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ रामकाव्य धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि रामकाव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम-काव्य और नाटक रहें हैं। इस काव्य धारा के अवलोकन से इसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं –

राम का स्वरूप–रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद के अनुयायी सभी रामभक्त कवि विष्णु के अवतार दशरथ-पुत्र राम के उपासक हैं। अवतारवाद में विश्वास है। उनके राम परब्रह्म स्वरूप हैं। उनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। सौंदर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा करते हैं तथा गुणों से संसार को आचार की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक हैं। भक्ति का स्वरूप–इनकी भक्ति में सेवक-सेव्य भाव है। वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं। वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान को महान बतलाते हैं। तुलसीदास ने लिखा है–सेवक-सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि। राम-काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक-पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना है–भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा। यद्यपि वे ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति का रूप वैधी रहा है, वह वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है। लोक-मंगल की भावना–रामभक्ति साहित्य में राम के लोक-रक्षक रूप की स्थापना हुई है। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं। इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की सर्जना हुई है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं तो भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं। कौशल्या आदर्श माता है, हनुमान आदर्श सेवक हैं। इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसी ने आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज और आदर्श राज्य

की कल्पना की है। आदर्श की प्रतिष्ठा से ही तुलसी लोकनायक कवि बन गए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है। समन्वय भावना–तुलसी का मानस समन्वय की विराट चेष्टा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस में शुरु से आखिर तक समन्वय का काव्य है। हम कह सकते हैं कि तुलसी आदि रामभक्त कवियों ने समाज, भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार किया है। राम भक्त कवियों की भारतीय संस्कृति में पूर्ण आस्था रही। पौराणिकता इनका आधार है और वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक हैं। लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांतः सुखाय थी। सामाजिक तत्त्व की प्रधानता रही। काव्य शैलियाँ–रामकाव्य में काव्य की प्रायः सभी शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीदास ने अपने युग की प्रायः सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीतिपद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, जायसी की दोहा पद्धति, सभी का सफलतापूर्वक प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। रामायण महानाटक (प्राणचंद चौहान) और हनुमननाटक (हृदयराम) में संवाद पद्धति और केशव की रामचंद्रिका में रीति-पद्धति का अनुसरण है। रस–रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन इतना विस्तृत व विविध है कि उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। तुलसी के मानस एवं केशव की रामचंद्रिका में सभी रस देखे जा सकते हैं। रामभक्ति के रसिक संप्रदाय के काव्य में शृंगार रस को प्रमुखता मिली है। मुख्य रस यद्यपि शांत रस ही रहा।

भाषा–रामकाव्य में मुख्यतः अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का शृंगार बनी है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। बुंदेली, भोजपुरी, फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। रामचरितमानस की अवधी प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है। छंद–रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई में हुई है। दोहा चौपाई प्रबंधात्मक काव्यों के लिए उत्कृष्ट छंद हैं। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सोरठा, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

अलंकार–रामभक्त कवि विद्वान पंडित हैं। इन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की। तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का प्रयोग मानस में अधिक है।

ज्ञानाश्रयी मार्गी

इस शाखा के भक्त-कवि निर्गुणवादी थे और राम की उपासना करते थे। वे गुरु को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति-पाति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढियों का वे विरोध करते थे। लगभग सब संत अनपढ़ थे परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे। प्राय: सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत-कवियों के नाम हैं - नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने निर्गुण भक्ति के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठाए हैं तथा प्रतिपादित किया है कि संतों की निर्गुण भक्ति का अपना स्वरूप है जिसको वेदांत दर्शन के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके शब्द हैं–

भक्ति या उपासना के लिए गुणों की सत्ता आवश्यक है। ब्रह्म के सगुण स्वरूप को आधार बनाकर तो भक्ति/उपासना की जा सकती है किन्तु जो निर्गुण एवं निराकार है उसकी भक्ति किस प्रकार सम्भव है ? निर्गुण के गुणों का आख्यान किस प्रकार किया जा सकता है ? गुणातीत में गुणों का प्रवाह किस प्रकार माना जा सकता है ? जो निरालम्ब है, उसको आलम्बन किस प्रकार बनाया जा सकता है। जो अरूप है, उसके रूप की कल्पना किस प्रकार सम्भव है। जो रागातीत है, उसके प्रति रागों का अर्पण किस प्रकार किया जा सकता है ? रूपातीत से मिलने की उत्कंठा का क्या औचित्य हो सकता है। जो नाम से भी अतीत है, उसके नाम का जप किस प्रकार किया जा सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रश्न 'निर्गुण-भक्ति' के स्वरूप को ताल ठोंककर चुनौती देते हुए प्रतीत होते हैं। कबीर आदि संतों की दार्शनिक विवेचना करते समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह मान्यता स्थापित की है कि उन्होंने निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा है। इस सम्बन्ध में जब

हम शांकर अद्वैतवाद एवं संतों की निर्गुण भक्ति के तुलनात्मक पक्षों पर विचार करते हैं तो उपर्युक्त मान्यता की सीमायें स्पष्ट हो जाती हैं–

(क) शांकर अद्वैतवाद में भक्ति को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु उसे साध्य नहीं माना गया है। संतों ने (सूफियों ने भी) भक्ति को साध्य माना है।

(ख) शांकर अद्वैतवाद में मुक्ति के प्रत्यक्ष साधन के रूप में 'ज्ञान' को ग्रहण किया गया है। वहाँ मुक्ति के लिए भक्ति का ग्रहण अपरिहार्य नहीं है। वहाँ भक्ति के महत्व की सीमा प्रतिपादित है। वहाँ भक्ति का महत्व केवल इस दृष्टि से है कि वह अन्त:करण के मालिन्य का प्रक्षालन करने में समर्थ सिद्ध होती है। भक्ति आत्म-साक्षात्कार नहीं करा सकती, वह केवल आत्म साक्षात्कार के लिए उचित भूमिका का निर्माण कर सकती है। संतों ने अपना चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार या भगवद्-दर्शन माना है तथा भक्ति के ग्रहण को अपरिहार्य रूप में स्वीकार किया है क्योंकि संतों की दृष्टि में भक्ति ही आत्म-साक्षात्कार या भगवद्दर्शन कराती है।

प्रेमाश्रयी शाखा

मुसलमान सूफी कवियों की इस समय की काव्य-धारा को प्रेममार्गी माना गया है क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होते हैं ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की तरह प्रेम भी सर्वव्यापी तत्त्व है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यह उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है। उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू-जीवन से संबंधित कथाएं लिखी हैं। खंडन-मंडन में न पड़कर इन फकीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है। ईश्वर को माशूक माना गया है और प्राय: प्रत्येक गाथा में कोई राजकुमार किसी राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नानाविध कष्टों का सामना करता है, विविध कसौटियों से पार होता है और तब जाकर माशूक को प्राप्त कर सकता है। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख हैं। आपका 'पद्मावत' महाकाव्य इस शैली की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य कवियों में प्रमुख हैं - मंझन, कुतुबन और उसमान।

सूरदास

सूरदास कवियों में सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हिंदी साहित्य, के सूर्य, माने जाते हैं। जीवन परिचय भक्तिकालीन महाकवि सूरदास का जन्म रुनकता नामक ग्राम में 1540 ईव में पंडित रामदास जी के घर हुआ। पंडित रामदास सारस्वत ब्राह्मण थे कुछ सीही नामक संस्था को सूरदास का जन्म स्थल मानते हैं। सूरदास जन्म से अंधे थे या नहीं इस संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है उन्होंने हिंदी भाषा को ऊँचा रखने की कोशिश की।

इनके बारे में 'भक्तमाल' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में थोड़ी-बहुत जानकारी मिल जाती है। 'आईने अकबरी' और 'मुंशियात अब्बुलफजल' में भी किसी संत सूरदास का उल्लेख है, किन्तु वे बनारस के कोई और सूरदास प्रतीत होते हैं। अनुश्रुति यह अवश्य है कि अकबर बादशाह सूरदास का यश सुनकर उनसे मिलने आए थे। 'भक्तमाल' में इनकी भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा इनकी अंधता का उल्लेख है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वे आगरा और मथुरा के बीच साधु या स्वामी के रूप में रहते थे। वे वल्लभाचार्य के दर्शन को गए और उनसे लीलागान का उपदेश पाकर कृष्ण-चरित विषयक पदों की रचना करने लगे। कालांतर में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण होने पर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्हें यहाँ कीर्तन का कार्य सौंपा। सूरदास के विषय में कहा जाता है कि वे जन्मांध थे। उन्होंने अपने को 'जन्म को आँधर' कहा भी है। किन्तु इसके शब्दार्थ पर अधिक नहीं जाना चाहिए। सूर के काव्य में प्रकृतियाँ और जीवन का जो सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रित है उससे यह नहीं लगता कि वे जन्मांध थे। उनके विषय में ऐसी कहानी भी मिलती है कि तीव्र अंतर्द्वन्द्व के किसी क्षण में उन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं। उचित यही मालूम पड़ता है कि वे जन्मांध नहीं थे। कालांतर में अपनी आँखों की ज्योति खो बैठे थे। सूरदास अब अंधों को कहते हैं। यह परम्परा सूर के अंधे होने से चली है। सूर का आशय 'शूर' से है। शूर और सती मध्यकालीन भक्त साधकों के आदर्श थे।

संत शिरोमणि रविदास

रैदास नाम से विख्यात संत रविदास का जन्म सन् 1388 (इनका जन्म कुछ विद्वान 1398 में हुआ भी बताते हैं) को बनारस में हुआ था। रैदास कबीर के समकालीन थे। रैदास की ख्याति से प्रभावित होकर सिकंदर लोदी ने इन्हें

दिल्ली आने का निमंत्रण भेजा था। मध्ययुगीन साधकों में रैदास का विशिष्ट स्थान है। कबीर की तरह रैदास भी संत कोटि के प्रमुख कवियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। कबीर ने 'संतन में रविदास' कहकर इन्हें मान्यता दी है।

मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा जैसे दिखावों में रैदास का बिल्कुल भी विश्वास न था। वह व्यक्ति की आंतरिक भावनाओं और आपसी भाईचारे को ही सच्चा धर्म मानते थे। रैदास ने अपनी काव्य-रचनाओं में सरल, व्यावहारिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और उर्दू-फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है। रैदास को उपमा और रूपक अलंकार विशेष प्रिय रहे हैं। सीधे-सादे पदों में संत कवि ने हृदय के भाव बड़ी सफाई से प्रकट किए हैं। इनका आत्मनिवेदन, दैन्य भाव और सहज भक्ति पाठक के हृदय को उद्वेलित करते हैं। रैदास के चालीस पद सिखों के पवित्र धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहब' में भी सम्मिलित हैं। कहते हैं मीरा के गुरु रैदास ही थे।

रविदास जी के पद

अब कैसे छूटे राम रट लागी। प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अँग-अँग बास समानी प्रभु जी, तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती प्रभु जी, तुम मोती, हम धागा जैसे सोनहिं मिलत सोहागा प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै 'रैदासाश

रैदास के दोहे (काव्य)

जाति-जाति में जाति हैं, जो केतन के पात। रैदास मनुष ना जुड़ सके जब तक जाति न जात।।

रैदास कनक और कंगन माहि जिमि अंतर कछु नाहिं। तैसे ही अंतर नहीं हिन्दुअन तुरकन माहि।।

हिंदू तुरक नहीं कछु भेदा सभी मह एक रक्त और मासा। दोऊ एकऊ दूजा नाहीं, पेख्यो सोइ रैदासा।।

कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै। तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।।

कृष्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा। वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा।।

ध्रुवदास

ये श्री हितहरिवंश के शिष्य स्वप्न में हुए थे। इसके अतिरिक्त उनका कुछ जीवनवृत्त प्राप्त नहीं हुआ। वे अधिकतर वृंदावन में ही रहा करते थे। उनकी रचना बहुत ही विस्तृत है और इन्होंने पदों के अतिरिक्त दोहे, चौपाई, कवित्त, सवैये आदि अनेक छंदों में भक्ति और प्रेमतत्त्वों का वर्णन किया है।

कृतियाँ-

1. वृंदावनसत
2. सिंगारसत
3. रसरत्नावली
4. नेहमंजरी
5. रहस्यमंजरी

रसखान

ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। ये लौकिक प्रेम से कृष्ण प्रेम की ओर उन्मुख हुए। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। रसखान ने कृष्ण का लीलागान गेयपदों में नहीं, सवैयों में किया है। रसखान को सवैया छंद सिद्ध था। जितने सहज, सरस, प्रवाहमय सवैये रसखान के हैं, उतने शायद ही किसी अन्य कवि के हों। रसखान का कोई ऐसा सवैया नहीं मिलता जो उच्च स्तर का न हो। उनके सवैये की मार्मिकता का बहुत बड़ा आधार दृश्यों और बाह्यांतर स्थितियों की योजना में है। वही योजना रसखान के सवैयों के ध्वनि-प्रवाह में है। ब्रजभाषा का ऐसा सहज प्रवाह अन्यत्र बहुत कम मिलता है। रसखान सूफियों का हृदय लेकर कृष्ण की लीला पर काव्य रचते हैं। उनमें उल्लास, मादकता और उत्कटता तीनों का संयोग है। ब्रज भूमि के प्रति जो मोह रसखान की कविताओं में दिखाई पड़ता है, वह उनकी विशेषता है।

कृतियाँ

1. प्रेमवाटिका
2. सुजान रसखान

व्यास जी

इनका पूरा नाम हरीराम व्यास था और वे ओरछा के रहने वाले थे। ओरछानरेश मधुकर शाह के ये राजगुरू थे। पहले ये गौड़ सम्प्रदाय के वैष्णव थे पीछे हितहरिवंशजी के शिष्य होकर राधाबल्लभी हो गए। इनका समय सन् 1563 ई. के आसपास है। इनकी रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्णभक्तों की अपेक्षा व्यापक है। ये श्रीकृष्ण की बाललीला औरशृंगारलीला में लीन रहने पर भी बीच में संसार पर दृष्टि डाला करते थे। इन्होंने तुलसीदास के समान खलों, पाखंडियों आदि का भी स्मरण किया और रसखान के अतिरिक्त तत्त्वनिरूपण में भी ये प्रवृत्त हुए हैं।

कृतियाँ

1. रासपंचाध्यायी

स्वामी हरिदास

ये महात्मा वृंदावन में निंबार्क मतांतर्गत टट्टी संप्रदाय, जिसे सुसू संप्रदाय भी कहते है, के संस्थापक थे और अकबर के समय में एक सिद्ध भक्त और संगीत-कला-कोविद माने जाते थे। कविताकाल सन् 1543 से 1560 ई. ठहरता है। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन इनका गुरूवत् सम्मान करते थे। यह प्रसिद्ध है कि अकबर बादशाह साधु के वेश में तानसेन के साथ इनका गाना सुनने के लिए गया था। कहते हैं कि तानसेन इनके सामने गाने लगे और उन्होंने जानबूझकर गाने में कुछ भूल कर दी। इसपर स्वामी हरिदास ने उसी गाना को शुद्ध करके गाया। इस युक्ति से अकबर को इनका गाना सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। पीछे अकबर ने बहुत कुछ पूजा चढ़ानी चाही पर इन्होंने स्वीकृत न की। इनका जन्म समय कुछ ज्ञात नहीं है।

कृतियाँ

1. स्वामी हरिदास जी के पद
2. हरिदास जी की बानी

मीराबाई

ये मेड़तिया के राठौड़ रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधा की प्रपौत्री थीं। इनका जन्म सन् 1516

ई. में चोकड़ी नाम के एक गाँव में हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज के साथ हुआ था। ये आरंभ से ही कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थी। विवाह के उपरांत थोड़े दिनों में इनके पति का परलोकवास हो गया। ये प्राय: मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति के सामने आनंदमग्न होकर नाचती और गाती थी। कहते हैं कि इनके इस राजकुलविरूद्ध आचरण से इनके स्वजन लोकनिंदा के भय से रूष्ट रहा करते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर विष का कोई प्रभाव इन पर न हुआ। घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर ये द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में घूम-घूमकर भजन सुनाया करती थीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि घरवालों से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को यह पद लिखकर भेजा था। स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषन दूषन हरन गोसाईं। बारहिं बार प्रनाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई। घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई। साधु संग अरू भजन करत मोहिं देत कलेस महाई मेरे मात पिता के सम हौ, हरिभक्तन्ह सुखदाई। हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समझाई ।। इस पर गोस्वामी जी ने 'विनयपत्रिका' का यह पद लिखकर भेजा था–जाके प्रिय न राम बैदेही। सो नर तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं। अंजन कहा आँखि जौ फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं। मीराबाई की मृत्यु द्वारका में सन् 1546 ई. में हो चुकी थी। अत: यह जनश्रुति किसी की कल्पना के आधार पर ही चल पड़ी। मीराबाई का नाम प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यास जी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है।

कृतियाँ

1. नरसी जी का मायरा
2. गीतगोविंद टीका
3. राग गोविंद
4. राग सोरठ के पद

गदाधर भट्ट

ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। इनके जन्म का समय ठीक से पता नहीं, पर यह बात प्रसिद्ध है कि ये श्री चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। इनका

समर्थन भक्तमाल की इन पंक्तियों से भी होता है– भागवत सुधा बरखै बदन, काहू को नाहिंन दुखद। गुणनिकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद संस्कृत के चूडांत पंडित होने के कारण शब्दों पर इनका बहुत विस्तृत अधिकार था। इनका पदविन्यास बहुत ही सुंदर है।

हितहरिवंश

राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोसाई हितहरिवंश का जन्म सन् 1502 ई. में मथुरा से 4 मील दक्षिण बादगाँव में हुआ था। राधावल्लभी सम्प्रदाय के पंडित गोपालप्रसाद शर्मा ने इनका जन्म सन् 1473 ई. माना है। इनके पिता का नाम केशवदास मिश्र और माता का नाम तारावती था। कहते हैं कि हितहरिवंश पहले माध्वानुयायी गोपाल भट्ट के शिष्य थे। पीछे इन्हें स्वप्न में राधिकाजी ने मंत्र दिया और इन्होंने अपना एक अलग संप्रदाय चलाया। अत: हित सम्प्रदाय को माध्व संप्रदाय के अंतर्गत मान सकते हैं। हितहरिवंश के चार पुत्र और एक कन्या हुई। गोसाई जी ने सन् 1525 ई. में श्री राधावल्लभ जी की मूर्ति वृंदावन में स्थापित की और वहीं विरक्त भाव से रहने लगे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान और भाषा काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। ब्रजभाषा की रचना इनकी यद्यपि बहुत विस्तृत नहीं है तथापि बड़ी सरस और हृदयग्राहिणी है।

कृतियाँ –

1. राधासुधानिधि
2. हित चौरासी

गोविन्दस्वामी

ये अंतरी के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की भाँति आकर महावन में रहने लगे थे। पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए जिन्होंने इनके रचे पदों से प्रसन्न होकर इन्हें अष्टछाप में लिया। ये गोवर्धन पर्वत पर रहते थे और उसके पास ही इन्होंने कदंबों का एक अच्छा उपवन लगाया था जो अब तक 'गोविन्दस्वामी की कदंबखडी' कहलाता है। इनका रचनाकाल सन् 1543 और 1568 ई. के भीतर ही माना जा सकता है। वे कवि होने के अतिरिक्त बड़े पक्के गवैये थे। तानसेन कभी-कभी इनका गाना सुनने के लिए आया करते थे।

छीतस्वामी

विट्ठलनाथ जी के शिष्य और अष्टछाप के अंतर्गत थे। पहले ये मथुरा के सुसम्पन्न पंडा थे और राजा बीरबल जैसे लोग इनके जजमान थे। पंडा होने के कारण ये पहले बड़े अक्खड़ और उद्दंड थे, पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेकर परम शांत भक्त हो गए और श्रीकृष्ण का गुणानुवाद करने लगे। इनकी रचनाओं का समय सन् 1555 ई. के इधर मान सकते हैं। इनके पदों में शृंगार के अतिरिक्त ब्रजभूमि के प्रति प्रेमव्यंजना भी अच्छी पाई जाती है। 'हे विधना तोसों अँचरा पसारि माँगौ जनम जनम दीजो याही ब्रज बसिबो' पद इन्हीं का है।

चतुर्भुजदास

ये कुंभनदास जी के पुत्र और गोसाईं विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। ये भी अष्टछाप के कवियों में हैं। इनकी भाषा चलती और सुव्यवस्थित है। इनके बनाए तीन ग्रंथ मिले हैं।

कृतियाँ

1. द्वादशयश
2. भक्तिप्रताप
3. हितजू को मंगल

कुंभनदास

ये भी अष्टछाप के एक कवि थे और परमानंद जी के ही समकालीन थे। ये पूरे विरक्त और धन, मान, मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर इन्हें फतहपुर सीकरी जाना पड़ा जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। पर इसका इन्हें बराबर खेद ही रहा, जैसा कि इस पद से व्यंजित होता है– संतन को कहा सीकरी सो काम ? आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम. इनका कोई ग्रंथ न तो प्रसिद्ध है और न अब तक मिला है।

परमानंद

यह वल्लभाचार्य जी के शिष्य और अष्टछाप में थे। सन् 1551 ई. के आसपास वर्तमान थे। इनका निवास स्थान कन्नौज था। इसी से ये कान्यकुब्ज अनुमान किए जाते हैं। अत्यंत तन्मयता के साथ बड़ा ही सरल कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्यजी कई दिनों तक बदन की सुध भूले रहे। इनके फुटकर पद कृष्णभक्तों के मुँह से प्रायः सुनने को आते थे।

कृतियाँ –

1. परमानंदसागर

कृष्णदास

जन्मना शूद्र होते हुए भी वल्लभाचार्य के कृपा-पात्र थे और मंदिर के प्रधान हो गए थे। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार एक बार गोसाई विट्ठलनाथजी से किसी बात पर अप्रसन्न होकर इन्होंने उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी। इस पर गोसाई के कृपापात्र महाराज बीरबल ने इन्हें कैद कर लिया। पीछे गोसाई जी इस बात से बड़े दुखी हुए और उनको कारागार से मुक्त कराके प्रधान के पद पर फिर ज्यों का त्यों प्रतिष्ठित कर दिया। इन्होंने भी और सब कृष्ण भक्तों के समान राधाकृष्ण के प्रेम को लेकरशृंगार रस के ही पद गाए हैं। 'जुगलमान चरित' नामक इनका एक छोटा सा ग्रंथ मिलता है। इसके अतिरिक्त इनके बनाए दो ग्रंथ और कहे जाते हैं-भ्रमरगीत और प्रेमतत्त्व निरूपण. इनका कविताकाल सन् 1550 क आगे पीछे माना जाता है।

कृतियाँ–

1. जुगलमान चरित
2. भ्रमरगीत
3. प्रेमतत्त्व निरूपण

श्रीभट्ट

ये निंबार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे। इनका जन्म सन् 1538 ई. में अनुमान किया जाता है। इनकी कविता सीधी-सादी

और चलती भाषा में है। पद भी प्राय: छोटे-छोटे हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि जब ये तन्मय होकर अपने पद गाने लगते थे तब कभी-कभी उस पद के ध्यानानुरूप इन्हें भगवान की झलक प्रत्यक्ष मिल जाती थी।

कृतियाँ-

1. युगल शतक
2. आदि बानी

सूरदास मदनमोहन

ये अकबर के समय में संडीले के अमीन थे। ये जो कुछ पास में आता प्राय: साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे। कहते हैं कि एक बार संडीले तहसील की मालगुजारी के कई लाख रूपये सरकारी खजाने में आए थे। इन्होंने सब का सब साधुओं को खिलापिला दिया और शाही खजाने में कंकड़-पत्थरों से भरे संदूक भेज दिए जिनके भीतर कागज के चिट यह लिख कर रख दिए– तेरह लाख सँडीले आए, सब साधुन मिलि गटके सूरदास मदनमोहन आधी रातहिं सटके और आधी रात को उठकर कहीं भाग गए। बादशाह ने इनका अपराध क्षमा करके इन्हें फिर बुलाया, पर ये विरक्त होकर वृंदावन में रहने लगे। इनकी कविता इतनी सरस होती थी कि इनके बनाए बहुत से पद सूरसागर में मिल गए। इनकी कोई पुस्तक प्रसिद्ध नहीं। इनका रचनाकाल सन् 1533 ई. और 1543 ई. के बीच अनुमान किया जाता है।

नंददास

नंददास 16 वीं शती के अंतिम चरण में विद्यमान थे। इनके विषय में 'भक्तमाल' में लिखा है– 'चन्द्रहास-अग्रज सुहृद परम प्रेम में पगे' इससे इतना ही सूचित होता है कि इनके भाई का नाम चंद्रहास था। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार ये तुलसीदास के भाई थे, किन्तु अब यह बात प्रामाणिक नहीं मानी जाती. उसी वार्ता में यह भी लिखा है कि द्वारका जाते हुए नंददास सिंधुनद ग्राम में एक रूपवती खत्रनी पर आसक्त हो गए। ये उस स्त्री के घर में चारो ओर चक्कर लगाया करते थे। घरवाले हैरान होकर कुछ दिनों के लिए गोकुल चले गए। वहाँ भी वे जा पहुँचे। अंत में वहीं पर गोसाईं विट्ठलनाथ जी के सदुपदेश से इनका मोह छूटा और ये अनन्य भक्त हो गए। इस कथा

में ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है कि इन्होंने गोसाई विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली। इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है– 'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया' इससे प्रकट होता है कि इनके काव्य का कला-पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इनकी रचना बड़ी सरस और मधुर है। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रासपंचाध्यायी' है, जो रोला छंदों में लिखी गई है। इसमें जैसा कि नाम से ही प्रकट है, कृष्ण की रासलीला का अनुप्रासादियुक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन है।

कृतियाँ

पद्य रचना

रासपंचाध्यायी
भागवत दशम स्कंध
रूक्मिणीमंगल
सिद्धांत पंचाध्यायी
रूपमंजरी
मानमंजरी
विरहमंजरी
नामचिंतामणिमाला
अनेकार्थनाममाला
दानलीला
मानलीला
अनेकार्थमंजरी
ज्ञानमंजरी
श्यामसगाई
भ्रमरगीत
सुदामाचरित्र

गद्यरचना

हितोपदेश
नासिकेतपुराण

चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु भक्तिकाल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इन्होंने वैष्णवों के गौड़ीय संप्रदाय की आधारशिला रखी। भजन गायकी की एक नयी शैली को जन्म दिया तथा राजनैतिक अस्थिरता के दिनों में हिंदू मुस्लिम एकता की सद्भावना को बल दिया, जाति-पांत, ऊंच-नीच की भावना को दूर करने की शिक्षा दी तथा विलुप्त वृंदावन को फिर से बसाया और अपने जीवन का अंतिम भाग वहीं व्यतीत किया।

चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन 1486 की फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को पश्चिम बंगाल के नवद्वीप (नादिया) नामक उस गांव में हुआ, जिसे अब मायापुर कहा जाता है। बाल्यावस्था में इनका नाम विश्वंभर था, परंतु सभी इन्हें निमाई कहकर पुकारते थे। गौरवर्ण का होने के कारण लोग इन्हें गौरांग, गौर हरि, गौर सुंदर आदि भी कहते थे। चैतन्य महाप्रभु के द्वारा गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय की आधारशिला रखी गई। उनके द्वारा प्रारंभ किए गए महामंत्र नाम संकीर्तन का अत्यंत व्यापक व सकारात्मक प्रभाव आज पश्चिमी जगत तक में है। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र व मां का नाम शचि देवी था। निमाई बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा संपन्न थे। साथ ही, अत्यंत सरल, सुंदर व भावुक भी थे। इनके द्वारा की गई लीलाओं को देखकर हर कोई हतप्रभ हो जाता था। बहुत कम उम्र में ही निमाई न्याय व व्याकरण में पारंगत हो गए थे। इन्होंने कुछ समय तक नादिया में विद्यालय स्थापित करके अध्यापन कार्य भी किया। निमाई बाल्यावस्था से ही भगवद्चिंतन में लीन रहकर राम व कृष्ण का स्तुति गान करने लगे थे। 15-16 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह लक्ष्मीप्रिया के साथ हुआ। सन 1505 में सर्प दंश से पत्नी की मृत्यु हो गई। वंश चलाने की विवशता के कारण इनका दूसरा विवाह नवद्वीप के राजपंडित सनातन की पुत्री विष्णुप्रिया के साथ हुआ। जब ये किशोरावस्था में थे, तभी इनके पिता का निधन हो गया। सन 1509 में जब ये अपने पिता का श्राद्ध करने गया गए, तब वहां इनकी मुलाकात ईश्वरपुरी नामक संत से हुई। उन्होंने निमाई से कृष्ण-कृष्ण रटने को कहा। तभी से इनका सारा जीवन बदल गया और ये हर समय भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहने लगे।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति इनकी अनन्य निष्ठा व विश्वास के कारण इनके असंख्य अनुयायी हो गए। सर्वप्रथम नित्यानंद प्रभु व अद्वैताचार्य महाराज इनके शिष्य बने। इन दोनों ने निमाई के भक्ति आंदोलन को तीव्र गति प्रदान की। निमाई

ने अपने इन दोनों शिष्यों के सहयोग से ढोलक, मृदंग, झाँझ, मंजीरे आदि वाद्य यंत्र बजाकर व उच्च स्वर में नाच-गाकर हरि नाम संकीर्तन करना प्रारंभ किया। 'हरे-कृष्ण, हरे-कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे। हरे-राम, हरे-राम, राम-राम, हरे-हरे नामक अठारह शब्दीय कीर्तन महामंत्र निमाई की ही देन है। जब ये कीर्तन करते थे, तो लगता था मानो ईश्वर का आह्वान कर रहे हैं। सन 1510 में संत प्रवर श्री पाद केशव भारती से संन्यास की दीक्षा लेने के बाद निमाई का नाम कृष्ण चैतन्य देव हो गया। बाद में ये चैतन्य महाप्रभु के नाम से प्रख्यात हुए। चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेने के बाद नीलांचल चले गए। इसके बाद दक्षिण भारत के श्री रंग क्षेत्र व सेतु बंध आदि स्थानों पर भी रहे। इन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर हरिनाम की महत्ता का प्रचार किया। सन 1515 में वृंदावन आए। यहां इन्होंने इमली तला और अक्रूर घाट पर निवास किया। वृंदावन में रहकर इन्होंने प्राचीन श्रीधाम वृंदावन की महत्ता प्रतिपादित कर लोगों की सुप्त भक्ति भावना को जागृत किया। यहां से फिर ये प्रयाग चले गए। इन्होंने काशी, हरिद्वार, शृंगेरी (कर्नाटक), कामकोटि पीठ (तमिलनाडु), द्वारिका, मथुरा आदि स्थानों पर रहकर भगवद्नाम संकीर्तन का प्रचार-प्रसार किया।

चैतन्य महाप्रभु ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष जगन्नाथ पुरी में रहकर बिताए। यहीं पर सन 1533 में 47 वर्ष की अल्पायु में रथयात्रा के दिन उनका देहांत हो गया। चैतन्य महाप्रभु ने लोगों की असीम लोकप्रियता और स्नेह प्राप्त किया कहते हैं कि उनकी अद्भुत भगवद्भक्ति देखकर जगन्नाथ पुरी के राजा तक उनके श्रीचरणों में नत हो जाते थे। बंगाल के एक शासक के मंत्री रूपगोस्वामी तो मंत्री पद त्यागकर चैतन्य महाप्रभु के शरणागत हो गए थे। उन्होंने कुष्ठ रोगियों व दलितों आदि को अपने गले लगाकर उनकी अनन्य सेवा की। वे सदैव हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश देते रहे। साथ ही, उन्होंने लोगों को पारस्परिक सद्भावना जागृत करने की प्रेरणा दी। वस्तुतः उन्होंने जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर समाज को मानवता के सूत्र में पिरोया और भक्ति का अमृत पिलाया। वे गौडीय संप्रदाय के प्रथम आचार्य माने जाते हैं।

चैतन्य महाप्रभु के द्वारा कई ग्रंथ भी रचे गए। उन्होंने संस्कृत भाषा में भी तमाम रचनाएं की। उनका मार्ग प्रेम व भक्ति का था। वे नारद जी की भक्ति से अत्यंत प्रभावित थे, क्योंकि नारद जी सदैव 'नारायण-नारायण जपते रहते थे। उन्होंने विश्व मानव को एक सूत्र में पिरोते हुए यह समझाया कि ईश्वर एक है। उन्होंने लोगों को यह मुक्ति सूत्र भी दिया-

'कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, पाहियाम। राम राघव, राम राघव, राम राघव, रक्षयाम।

हिंदू धर्म में नाम जप को ही वैष्णव धर्म माना गया है और भगवान श्रीकृष्ण को प्रधानता दी गई है। चैतन्य ने इन्हीं की उपासना की और नवद्वीप से अपने छह प्रमुख अनुयायियों (षड गोस्वामियों), गोपाल भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी को वृंदावन भेजकर वहां गोविंददेव मंदिर, गोपीनाथ मंदिर, मदन मोहन मंदिर, राधा रमण मंदिर, राधा दामोदर मंदिर, राधा श्यामसुंदर मंदिर और गोकुलानंद मंदिर नामक सप्त देवालयों की आधारशिला रखवाई।

लोग चैतन्य को भगवान श्री कृष्ण का अवतार मानते हैं।

जीवन परिचय

सूरदास का जन्म रुनकता नामक गाँव में हुआ। यह गाँव मथुरा–आगरा मार्ग के किनारे स्थित है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह बहुत विद्वान थे, उनकी लोग आज भी चर्चा करते है। सूरदास के जन्मांध होने के विषय में मतभेद है। प्रारंभ में सूरदास आगरा के समीप गऊघाट पर रहते थे। वहीं उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर के कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया।

सूरदास बनना

मदन मोहन एक बहुत ही सुन्दर और तेज बुद्धि के नवयुवक थे वह हर दिन नदी के किनारे जा कर बैठ जाता और गीत लिखता।। एक दिन एक ऐसा वाकया हुआ जिसने उसका मन को मोह लिया। हुआ ये की एक सुन्दर नवयुवती नदी किनारे कपड़े धो रही थी, मदन मोहन का ध्यान उसकी तरफ चला गया। उस युवती ने मदन मोहन को ऐसा आकर्षित किया की वह कविता लिखना भूल गए और पूरा ध्यान लगा कर उस युवती को देखने लगे। उनको ऐसा लगा मानो यमुना किनारे राधिका स्नान कर के बैठी हो। उस नवयुवती ने भी मदन मोहन की तरफ देखा और उनके पास आकर बोली आप मदन मोहन जी हो ना? तो वह बोले, हां मैं मदन मोहन हूँ। कविताये लिखता हूँ तथा गाता हूँ आपको देखा तो रुक गया। नवयुवती ने पूछा क्यों ? तो वह बोले आप हो ही इतनी सुन्दर।

यह सिलसिला कई दिनों तक चला। जब यह बात मदन मोहन के पिता को पता चली तो उनको बहुत क्रोध आया। फिर मदन मोहन ने उसका घर छोड़ दिया। पर उस सुन्दर युवती का चेहरा उनके सामने से नहीं जा रहा था एक दिन वह मंदिर में बैठे थे तभी वहाँ एक शादीशुदा बहुत ही सुन्दर स्त्री आई। मदन मोहन उनके पीछे पीछे चल दिए। जब वह उसके घर पहुंचे तो उसके पति ने दरवाजा खोला तथा पूरे आदर सम्मान के साथ उन्हें अंदर बिठाया। फिर मदन मोहन ने दो जलती हुए सिलाया मांगी तथा उसे अपनी आँख में डाल दी। इस तरह मदन मोहन बने महान कवि सूरदास।

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। 'साहित्य लहरी' सूर की लिखी रचना मानी जाती है। इसमें साहित्य लहरी के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न पद मिलता है -

मुनि पुनि के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख॥

इसका अर्थ संवत् 1607 ईस्वी में माना गया है, अतएव 'साहित्य लहरी' का रचना काल संवत् 1607 वि0 है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रमाण मिलता है कि सूर के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे।

सूरदास का जन्म सं0 1540 ईस्वी के लगभग ठहरता है, क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि बल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे और बल्लभाचार्य का जन्म उक्त संवत् की वैशाख् कृष्ण एकादशी को हुआ था। इसलिए सूरदास की जन्म-तिथि वैशाख शुक्ला पंचमी, संवत् 1535 वि0 समीचीन जान पड़ती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उनकी मृत्यु संवत् 1620 से 1648 ईस्वी के मध्य स्वीकार किया जाता है। रामचन्द्र शुक्ल जी के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि0 के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 ईस्वी के आसपास माना जाता है।

श्री गुरु बल्लभ तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरदास की आयु 'सूरसारावली' के अनुसार उस समय 67 वर्ष थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर उनका जन्म रुनकता अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में हुआ था। मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। बल्लभाचार्य से इनकी भेंट वहीं पर हुई थी। 'भावप्रकाश' में सूर का जन्म स्थान सीही नामक ग्राम बताया गया है। वे सारस्वत ब्राह्मण थे और जन्म के अंधे थे। 'आइने अकबरी' में (संवत् 1653 ईस्वी) तथा

'मुतखबुत-तवारीख' के अनुसार सूरदास को अकबर के दरबारी संगीतज्ञों में माना है।

क्या सूरदास जन्मान्ध थे ?

सूरदास श्रीनाथ की 'संस्कृतवार्ता मणिपाला', श्री हरिराय कृत 'भाव-प्रकाश', श्री गोकुलनाथ की 'निजवार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर, जन्म के अन्धे माने गए हैं। लेकिन राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का सजीव चित्रण, नाना रंगों का वर्णन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशीलता आदि गुणों के कारण अधिकतर वर्तमान विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते।

श्यामसुन्दर दास ने इस सम्बन्ध में लिखा है - 'सूर वास्तव में जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग-रुपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मान्ध नहीं कर सकता।' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-, ने लिखा है - 'सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अन्धा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए।

रचनाएँ

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं-

1. सूरसागर - जो सूरदास की प्रसिद्ध रचना है। जिसमें सवा लाख पद संग्रहित थे। किंतु अब सात-आठ हजार पद ही मिलते हैं।
2. सूरसारावली
3. साहित्य-लहरी - जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं।
4. नल-दमयन्ती
5. ब्याहलो
6. 'पद संग्रह'

उपरोक्त में अन्तिम दो अप्राप्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, साहित्य लहरी की प्राप्त प्रति में बहुत प्रक्षिप्तांश जुड़े हुए हैं।

सूरसागर का मुख्य वर्ण्य विषय श्री कृष्ण की लीलाओं का गान रहा है। सूरसारावली में कवि ने जिन कृष्ण विषयक कथात्मक और सेवा परक पदों का गान किया उन्ही के सार रूप में उन्होंने सारावली की रचना की है।

सहित्यलहरी में सूर के दृष्टिकूट पद संकलित हैं।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1. सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग से श्रेष्ठ है।
2. सूर ने वात्सल्य,शृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्व व्यापी बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है।

   मैया कबहिं बढैगी चौटी?

   किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

   सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति है। जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है।
3. जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है।
4. सूर ने भक्ति के साथशृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।
5. सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

   हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।

   समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।
6. सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं।

7. प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है
8. सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है।
9. सूर का भ्रमरगीत वियोग-शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटें भी मिलते हैं।
10. सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है।
11. सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है।
12. सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है।
13. सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हिंदी साहित्य के महाकवि हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।

हरिराम व्यास

हरिराम व्यास राधावल्लभ सम्प्रदाय के उच्च कोटि के भक्त तथा कवि थे। राघावल्लभीय संप्रदाय के हरित्रय में इनका विशिष्ट स्थान है।

परिचय

भक्तप्रवर व्यास जी का जन्म ओड़छा निवासी श्री सुमोखन शुक्ल के घर मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी, संवत् 1567 को हुआ था। वे सनाढय शुक्ल ब्राह्मण थे। संस्कृत के अध्ययन में विशेष रुचि होने के कारण अल्पकाल ही में इन्होंने पांडित्य प्राप्त कर लिया। ओड़छा नरेश मधुकरशाह इनके मित्रशिष्य थे। व्यास जी अपने पिता की ही भाँति परम् वैष्णव तथा सद्गृहस्थ थे। राधाकृष्ण की ओर विशेष झुकाव हो जाने से ये ओड़छा छोड़कर वृंदावन चले आए। राधावल्लभ संप्रदाय के प्रमुख आचार्य गोस्वामी हितहरिवंश जी के जीवनदर्शन का इनके ऊपर ऐसा मोहक प्रभाव पड़ा कि इनकी अंतर्वृत्ति नित्यकिशोरी राधा तथा नित्यकिशोर कृष्ण के निकुंजलीलागान में रम गई। चैतन्य संप्रदाय के रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी से इनकी गाढ़ी मैत्री थी। इनकी निधन तिथि ज्येष्ठ शुक्ला 11, सोमवार सं. 1689 मानी जाती है।

इनका धार्मिक दृष्टिकोण व्यापक तथा उदार था। इनकी प्रवृत्ति दार्शनिक मतभेदों को प्रश्रय देने की नहीं थीं। राघावल्लभीय संप्रदाय के मूल तत्त्व – 'नित्यविहार दर्शन' – जिसे 'रसोपासना' भी कहते हैं – की सहज अभिव्यक्ति इनकी वाणी में हुई है। इन्होंने शृंगार के अंतर्गत संयोगपक्ष को नित्यलीला का प्राण माना है। राधा का नखशिख और शृंगारपरक इनकी अन्य रचनाएँ भी संयमित एवं मर्यादित हैं। 'व्यासवाणी' भक्ति और साहित्यिक गरिमा के कारण इनकी प्रौढ़तम कृति है।

पहले ये संस्कृत के शास्त्रार्थी पंडित थे और सदा शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार रहते थे। एक बार वृंदावन में जाकर गोस्वामी हितहरिवंश जी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। गोसाईं जी ने नम्र भाव से यह पद कहा –

यह जो एक मन बहुत ठौर करि कहि कौनै सचु पायो।
जहँ तहँ बिपति जार जुवती ज्यों प्रगट पिंगला गायो

दीक्षा-गुरु

निम्न दोहे से प्रतीत होता है कि इनके दीक्षा- गुरु हितहरिवंश थे –

उपदेस्यो रसिकन प्रथम, तब पाये हरिवंश।
जब हरिवंश कृपा करी, मिठे व्यास के संश॥

यह पद सुनकर व्यास जी चेत गए और हितहरिवंश जी के अनन्य भक्त हो गए। उनकी मृत्यु पर इन्होंने इस प्रकार अपना शोक प्रकट किया –

हुतो रस रसिकन को आधार।
बिन हरिबंसहि सरस रीति को कापै चलिहै भार?
को राधा दुलरावै गावै, बचन सुनावै कौन उचार?
वृंदावन की सहज माधुरी, कहिहै कौन उदार?
पद रचना अब कापै ह्वैहै? निरस भयो संसार।
बड़ो अभाग अनन्य सभा को, उठिगो ठाट सिंगार
जिन बिन दिन छिन जुग सम बीतत सहज रूप आगार।
व्यास एक कुल कुमुद चंद बिनु उडुगन जूठी थार।

जब हितहरिवंश जी से दीक्षा लेकर व्यास जी वृंदावन में ही रह गए तब महाराज 'मधुकर साह' इन्हें ओरछा ले जाने के लिए आए, पर ये वृंदावन छोड़कर न गए और अधीर होकर इन्होंने यह पद कहा –

वृंदावन के रूख हमारे माता पिता सुत बंधा।
गुरु गोविंद साधुगति मति सुख, फल फूलन की गंधा
इनहिं पीठि दै अनत डीठि करै सो अंधान में अंधा।
व्यास इनहिं छोड़ै और छुड़ावै ताको परियो कंधा

रचनाएँ

व्यास-वाणी (हिन्दी में)-प्रकाशित
रागमाला (हिन्दी में)
नवरत्न (संस्कृत में)
स्वधर्म पद्धति (संस्कृत में)

माधुर्य भक्ति का वर्णन

व्यास जी के उपास्य श्यामा-श्याम रूप, गुण तथा स्वभाव सभी दृष्टियों से उत्तम हैं। ये वृन्दावन में विविध प्रकार रास आदि की लीलाएं करते हैं। इन्हीं लीलाओं का दर्शन करके रसिक भक्त आत्म-विस्मृति की आनन्दपूर्ण दशा को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं। यद्यपि राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण को परस्पर किसी प्रकार के स्वकीया या परकीया भाव के बन्धन में नहीं बाँधा गया, किन्तु लीलाओं का वर्णन करते समय कवि ने सूरदास की भाँति यमुना-पुलिन पर अपने उपास्य-युगल का विवाह करवा दिया है।

मोहन मोहिनी को दूलहु।
मोहन की दुलहिनी मोहनी सखी निरखि निरखि किन फूलहु।
सहज ब्याह उछाह, सहज मण्डप, सहज यमुना के कूलहू।
सहज खवासिनि गावति नाचति सहज सगे समतूलहु।।

यही कृष्ण और राधा व्यास जी के सर्वस्व हैं। इनके आश्रय में ही जीव को सुख की प्राप्ति हो सकती है, अन्यत्र तो केवल दुख ही दुख है। इसीकारण अपने उपास्य के चरणों में दृढ़ विश्वास रखकर सुख से जीवन व्यतीत करते हैं–

काहू के बल भजन कौ, काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुँवरि के, सोवत पाँव पसार।।
राधा के रूप सौन्दर्य का वर्णन दृष्टव्य है।
नैन खग उड़िबे को अकुलात।
उरजन डर बिछुरे दुख मानत, पल पिंजरा न समात।।
घूंघट विपट छाँह बिनु विहरत, रविकर कुलहिं ड़रात।
रूप अनूप चुनौ चुनि निकट अधर सर देखि सिरात।।
धीर न धरत, पीर कहि सकत न, काम बधिक की घात।
व्यास स्वामिनी सुनि करुना हँसि, पिय के उर लपटात।।

साधना की दृष्टि से व्यास जी भक्ति का विशेष महत्व स्वीकार किया है । उनके विचार से व्यक्ति का जीवन केवल भक्ति से सफल हो सकता है।

जो त्रिय होइ न हरि की दासी।
कीजै कहा रूप गुण सुन्दर, नाहिंन श्याम उपासी।।
तौ दासी गणिका सम जानो दुष्ट राँड़ मसवासी।
निसिदिन अपनों अंजन मंजन करत विषय की रासी।।
परमारथ स्वप्ने नहिं जानत अन्ध बंधी जम फाँसी।

गदाधर भट्ट

ये दक्षिणी ब्राह्मण थे और तेलंग देश (आंध्र प्रदेश) के हनुमानपुर से उत्तर आए थे। इनके जन्म का समय ठीक से पता नहीं, पर यह बात प्रसिद्ध है कि ये श्री चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। इनका समर्थन भक्तमाल की इन पंक्तियों से भी होता है–

भागवत सुधा बरखै बदन, काहू को नाहिंन दुखद।
गुणनिकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद ।

इनका समय महाप्रभु चैतन्य के समय (वि 0 सं 0 1542 से वि 0 सं 0 1590) के आसपास अनुमानित किया जा सकता है। चैतन्य महाप्रभु और षट्गोस्वामियों के संपर्क के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनका कविता काल वि0सं0 1580 से 1600 के कुछ बाद तक अनुमानित किया है जीव गोस्वामी ने इनका एक पद 'श्याम रंग रँगी' सुनकर इन्हें वृंदावन बुलाया और सं. 1900 के लगभग यह वृंदावन पहुंचे। इन्होंने महाप्रभु चैतन्य का शिष्यत्व ग्रहण किया और उन्हीं के समान श्रीमद्भागवत की सरस कथा सबको सुनाने लगे। इन्होंने मदनमोहन का प्रतिष्ठापन कर सेवा आरंभ की। यह मंदिर वर्तमान है और इनके वंशज अब तक सेवा करते हैं।

साधुओं से गदाधर भट्ट के द्वारा रचित निम्न 'पूर्वानुराग' के पद को सुनकर जीव गोस्वामी मुग्ध हो गए–

सखी हौं स्याम रंग रंगी।
देखि बिकाय गई वह मूरति, सूरत माहिं पगी॥
संग हुतो अपनी सपनो सो, सोइ रही रस खोई।
जागेहु आगे दृष्टि परे सखि, नेकु न न्यारो होई॥
एक जु मेरी अंखियन में निसि द्यौस रह्यौ करि भौन।
गाइ चरावन जात सुन्यो सखि, सोधौं कन्हैया कौन॥
कासौं कहौं कौन पतियावै, कौन करे बकवाद।
कैसे कहि जात गदाधर, गूंगे को गुरु स्वाद॥

इनके जीवन और स्वभाव के सम्बन्ध में नाभादास जी के एक छप्पय तथा उस पर की गई प्रियादास की टीका से कुछ प्रकाश पड़ता है। नाभादास का छप्पय –

सज्जन सुखद, सुशील, बचन आरज प्रतिपालय।
निर्मत्सर, निहकाम, कृपा करुणा को आलय॥
अनन्य भजन दृढ़ करनि धरयो बपु भक्तन काजै।
परम धरम को सेतु, विदित वृन्दावन गाजै॥
भागौत सुधा बरषे बदन काहू को नाहिन दुखद।
गुन निकरश्गदाधर भट्टश्अति सबहिन कों लागै सुखद॥

रचनाएँ

भट्ट जी की अभी तक रचनाओं में केवल स्फुट पद ही प्राप्त हैं। इनके स्फुट पद गदाधर की वाणी नामक पुस्तक में संकलित हैं इसके प्रकाशक बाबा

कृष्ण दास हैं और हरिमोहन प्रिंटिंग प्रेस से मुद्रित है। इन स्फुट पदों का विषय विविध है। इनमें भक्त का दैन्य, वात्सल्य, बधाई (राधा और कृष्ण की), यमुना-स्मृति और राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन है।

माधुर्य भक्ति का वर्णन

भट्ट जी के उपास्य नित्य वृन्दावन में वास करने वाले राधा-कृष्ण हैं। उनका रूप, स्वभाव, शील, माधुर्य आदि इस प्रकार का है कि चिन्तन लिए मन लुब्ध हो जाता है। उनके अनुसार कृष्ण ब्रजराज कुल- तिलक, राधारमण, गोपीजनों को आनन्द देने वाले, दुष्ट दानवों का दमन करने वाले, भक्तों की सदा रक्षा करने वाले, लावण्य -मूर्ति तथा ब्रह्म, रूद्र आदि देवताओं द्वारा वन्दित हैं।

जय महाराज ब्रजराज कुल तिलक,
गोविन्द गोपीजनानन्द राधारमन।
बल दलन गर्व पर्वत विदारन।
ब्रज भक्त रच्छा दच्छ गिरिराज धरधीर।

कृष्ण -प्रेयसी राधा सकल गुणों की साधिका, तरुणी-मणि और नित्य नवीन किशोरी है। वे कृष्ण के रूप के लिए लालायित और कृष्ण-मुख-चन्द्र की चकोरी हैं। कृष्ण स्वयं उनकी रूप-माधुरी का पान करते हैं। गौरवर्णीय राधा का मन श्याम रंग में रंगा हुआ है और 64 कलाओं में प्रवीण होते हुए भी भोली हैं।

जयति श्री राधिके सकल सुख साधिके,
तरुनि मनि नित्य नवतन किशोरी।
कृष्ण तनु लीन मन रूप की चटकी,
कृष्ण मुख हिम किरण की चकोरी॥
कृष्ण दृग भृंग विश्राम हित पद्मिनी,
कृष्ण दृग मृगज बन्धन सुडोरी।
कृष्ण अनुराग मकरंद की मधुकरी,
कृष्ण गुनगान रससिन्धु बोरी॥
एक अद्भुत अलौकिक रीति मैं लखी,
मनसि स्यामल रंग अंग गोरी।
और आश्चर्य कहूँ मैं न देख्यो सुन्यो,
चतुर चौसठिकला तडवी भोरी॥

कबीर

कबीर या भगत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिखों के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है।

वे हिन्दू धर्म व इस्लाम के आलोचक थे। उन्होंने सामाजिक अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की थी। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपने विचार के लिए धमकी दी थी।

कबीर पंथ नामक धार्मिक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं।

जीवन परिचय

कबीर के (लगभग 14वीं-15वीं शताब्दी)जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं, जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है।

'काशी में परगट भये, रामानंद चेताये '

कबीर के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित कथन है कि कबीर को उपयुक्त गुरु की तलाश थी। वह वैष्णव संत आचार्य रामानंद को अपना गुरु बनाना चाहते थे लेकिन उन्होंने कबीर को शिष्य बनाने से मना कर दिया लेकिन कबीर ने अपने मन में ठान लिया कि स्वामी रामानंद को ही हर कीमत पर अपना गुरु बनाऊंगा, इसके लिए कबीर के मन में एक विचार आया कि स्वामी रामानंद जी सुबह चार बजे गंगा स्नान करने जाते हैं उसके पहले ही उनके जाने के मार्ग में सीढ़ियों पर लेट जाऊंगा और उन्होंने ऐसा ही किया। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगास्नान करने के लिये सीढ़ियां उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया।कबीर के ही शब्दों में-

काशी में परगट भये, रामानंद चेताये
जीविकोपार्जन के लिए कबीर जुलाहे का काम करते थे।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए क्योंकि लोगों की मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है।मगहर में उन्होंने अंतिम सांस ली। आज भी वहां पर मजार व समाधि स्थित है।

संत कबीरदास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के इकलौते ऐसे कवि हैं, जो आजीवन समाज और लोगों के बीच व्याप्त आडंबरों पर कुठाराघात करते रहे। वह कर्म प्रधान समाज के पैरोकार थे और इसकी झलक उनकी रचनाओं में साफ झलकती है। लोक कल्याण हेतु ही मानो उनका समस्त जीवन था। कबीर को वास्तव में एक सच्चे विश्व - प्रेमी का अनुभव था। कबीर की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी प्रतिभा में अबाध गति और अदम्य प्रखरता थी। समाज में कबीर को जागरण युग का अग्रदूत कहा जाता है।

जन्म

कबीरदास के जन्म के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कबीर पन्थियों की मान्यता है कि कबीर का जन्म काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद के प्रभाव से उन्हें हिन्दू धर्म की बातें मालूम हुईं। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगा स्नान करने के लिये सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-

हम कासी में प्रकट भये हैं,
रामानन्द चेताये।

कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।
घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरषें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए।

जन्मस्थान

कबीर के जन्मस्थान के संबंध में तीन मत हैं–मगहर, काशी और आजमगढ़ में बेलहरा गाँव।

मगहर के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि कबीर ने अपनी रचना में वहाँ का उल्लेख किया है–'पहिले दरसन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई अर्थात् काशी में रहने से पहले उन्होंने मगहर देखा। मगहर आजकल वाराणसी के निकट ही है और वहाँ कबीर का मकबरा भी है।

कबीर का अधिकांश जीवन काशी में व्यतीत हुआ। वे काशी के जुलाहे के रूप में ही जाने जाते हैं। कई बार कबीरपंथियों का भी यही विश्वास है कि कबीर का जन्म काशी में हुआ। किंतु किसी प्रमाण के अभाव में निश्चयात्मकता अवश्य भंग होती है।

बहुत से लोग आजमगढ़ जिले के बेलहरा गाँव को कबीर साहब का जन्मस्थान मानते हैं।

वे कहते हैं कि 'बेलहरा' ही बदलते-बदलते लहरतारा हो गया। फिर भी पता लगाने पर न तो बेलहरा गाँव का ठीक पता चल पाता है और न यही मालूम हो पाता है कि बेलहरा का लहरतारा कैसे बन गया और वह आजमगढ़ जिले से काशी के पास कैसे आ गया ? वैसे आजमगढ़ जिले में कबीर, उनके पंथ या अनुयायियों का कोई स्मारक नहीं है।

माता-पिता

कबीर के माता- पिता के विषय में भी एक राय निश्चित नहीं है। 'नीमा' और 'नीरु' की कोख से यह अनुपम ज्योति पैदा हुई थी, या लहर तालाब के समीप विधवा ब्राह्मणी की पाप- संतान के रुप में आकर यह पतितपावन हुए थे, ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता है। कई मत यह है कि नीमा और नीरु ने केवल इनका पालन- पोषण ही किया था। एक किवदंती के अनुसार कबीर को एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र बताया जाता है, जिसको भूल से रामानंद जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था।

एक जगह कबीर ने कहा है –

'जाति जुलाहा नाम कबीरा
बनि बनि फिरो उदासी।'

कबीर के एक पद से प्रतीत होता है कि वे अपनी माता की मृत्यु से बहुत दु:खी हुए थे। उनके पिता ने उनको बहुत सुख दिया था। वह एक जगह कहते हैं कि उसके पिता बहुत 'गुसाई' थे। ग्रंथ साहब के एक पद से विदित होता है कि कबीर अपने वयनकार्य की उपेक्षा करके हरिनाम के रस में ही लीन रहते थे। उनकी माता को नित्य कोश घड़ा लेकर लीपना पड़ता था। जबसे कबीर ने माला ली थी, उसकी माता को कभी सुख नहीं मिला। इस कारण वह बहुत खीज गई थी। इससे यह बात सामने आती है कि उनकी भक्ति एवं संत- संस्कार के कारण उनकी माता को कष्ट था।

बचपन

कबीरदास का लालन-पालन जुलाहा परिवार में हुआ था, इसलिए उनके मत का महत्त्वपूर्ण अंश यदि इस जाति के परंपरागत विश्वासों से प्रभावित रहा हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यद्यपि 'जुलाहा' शब्द फारसी भाषा का है, तथापि इस जाति की उत्पत्ति के विषय में संस्कृत पुराणों में कुछ-न-कुछ चर्चा मिलती ही है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्म खंड के दसवें अध्याय में बताया गया है कि म्लेच्छ से कुविंदकन्या में 'जोला' या जुलाहा जाति की उत्पत्ति हुई है। अर्थात् म्लेच्छ पिता और कुविंद माता से जो संतति हुई वही जुलाहा कहलाई।

जुलाहा

जुलाहे मुसलमान है, पर इनसे अन्य मुसलमानों का मौलिक भेद है। सन् 1901 की मनुष्य-गणना के आधार पर रिजली साहब ने 'पीपुल्स ऑफ इंडिया' नामक एक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ में उन्होंने तीन मुसलमान जातियों की तुलना की थी। वे तीन हैं– सैयद, पठान और जुलाहे। इनमें पठान तो भारतवर्ष में सर्वत्र फैले हुए हैं पर उनकी संख्या कहीं भी बहुत अधिक नहीं है। जान पड़ता है कि बाहर से आकर वे नाना स्थानों पर अपनी सुविधा के अनुसार बस गए। पर जुलाहे पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में ही पाए जाते हैं। जिन दिनों कबीरदास इस जुलाहा-जाति को अलंकृत कर रहे थे उन दिनों, ऐसा जान पड़ता है कि इस जाति ने अभी एकाध पुश्त से ही मुसलमानी धर्म ग्रहण किया था। कबीरदास की वाणी को समझने के लिए यह निहायत जरूरी है कि हम इस बात की जानकारी प्राप्त कर ले कि उन दिनों इस जाति के बचे-कुचे पुराने संस्कार क्या थे।

उत्तर भारत के वयनजीवियों में कोरी मुख्य हैं। बेन्स जुलाहों को कोरियों की समशील जाति ही मानते हैं। कुछेक पंडितों ने यह भी अनुमान किया है कि मुसलमानी धर्म ग्रहण करने वाले कोरी ही जुलाहे हैं। यह उल्लेख किया जा सकता है कि कबीरदास जहाँ अपने को बार-बार जुलाहा कहते हैं,

1. जाति जुलाहा मति कौ धीर। हरषि गुन रमै कबीर।
2. तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा।

वहाँ कभी-कभी अपने को कोरी भी कह गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि कबीरदास के युग में जुलाहों ने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था पर साधारण जनता में तब भी कोरी नाम से परिचित थे।

सबसे पहले लगने वाली बात यह है कि कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे बराबर अपने को 'ना-मुसलमान' कहते रहे। आध्यात्मिक पक्ष में निस्संदेह यह बहुत ऊँचा भाव है, पर कबीरदास ने कुछ इस ढंग से अपने को उभय-विशेष बताया है कि कभी-कभी यह संदेह होता है कि वे आध्यात्मिक सत्य के अतिरिक्त एक सामाजिक तथ्य की ओर भी इशारा कर रहे हैं। उन दिनों वयनजीवी नाथ-मतावलंबी गृहस्थ योगियों की जाति सचमुच ही 'ना-हिंदू ना-मुसलमान' थी। कबीरदास ने कम-से-कम एक पद में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि हिंदू और हैं, मुसलमान और हैं और योगी और हैं, क्योंकि योगी या जोगी 'गोरख-गोरख करता है, हिंदू 'राम-राम' उच्चारता है और मुसलमान 'खुदा-खुदा' कहा करता है।

शिक्षा

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे- अपनी अवस्था के बालकों से एकदम भिन्न रहते थे। कबीरदास की खेल में कोई रुचि नहीं थी। मदरसे भेजने लायक साधन पिता-माता के पास नहीं थे। जिसे हर दिन भोजन के लिए ही चिंता रहती हो, उस पिता के मन में कबीर को पढ़ाने का विचार भी न उठा होगा। यही कारण है कि वे किताबी विद्या प्राप्त न कर सके।

मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया।

वैवाहिक जीवन

कबीर का विवाह वनखेड़ी बैरागी की पालिता कन्या 'लोई' के साथ हुआ था। कबीर को कमाल और कमाली नाम की दो संतान भी थी। ग्रंथ साहब के एक श्लोक से विदित होता है कि कबीर का पुत्र कमाल उनके मत का विरोधी था।

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सिमरन छोडि के, घर ले आया माल।

कबीर की पुत्री कमाली का उल्लेख उनकी बानियों में कहीं नहीं मिलता है। कहा जाता है कि कबीर के घर में रात - दिन मुडियों का जमघट रहने से बच्चों को रोटी तक मिलना कठिन हो गया था। इस कारण से कबीर की पत्नी झुंझला उठती थी। एक जगह कबीर उसको समझाते हैं –

सुनि अंघली लोई बंपीर।
इन मुड़ियन भजि सरन कबीर॥

जबकि कबीर को कबीर पंथ में, बाल- ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार कामात्य उसका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या। लोई शब्द का प्रयोग कबीर ने एक जगह कंबल के रुप में भी किया है। वस्तुत: कबीर की पत्नी और संतान दोनों थे। एक जगह लोई को पुकार कर कबीर कहते हैं –

'कहत कबीर सुनहु रे लोई।
हरि बिन राखन हार न कोई॥'

यह हो सकता हो कि पहले लोई पत्नी होगी, बाद में कबीर ने इसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने स्पष्ट कहा है –

नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरि, नारी महा विकार॥

गुरु दीक्षा

कबीर जी ने सोचा कि गुरु किये बिना काम बनेगा नहीं। उस समय काशी में रामानन्द नाम के संत बड़े उच्च कोटि के महापुरुष माने जाते थे। कबीर जी ने उनके आश्रम के मुख्य द्वार पर आकर विनती की: 'मुझे गुरुजी के दर्शन कराओ।' उस समय जात-पाँत का बड़ा आग्रह रहता था। और फिर काशी ! वहाँ

पण्डितों और पाण्डे लोगों का अधिक प्रभाव था। कबीर जी ने देखा कि हर रोज सुबह तीन-चार बजे स्वामी रामानन्द खड़ाऊँ पहनकर 'टप...टप....' आवाज करते गंगा में स्नान करने जाते हैं। कबीर जी ने गंगा के घाट पर उनके जाने के रास्ते में और सब जगह बाड़ कर दी। एक ही मार्ग रखा और उस मार्ग में सुबह के अन्धेरे में कबीर जी सो गये। गुरु महाराज आये तो अन्धेरे के कारण कबीर जी पर पैर पड़ गया। उनके मुख से उदगार निकल पड़े: 'राम... राम... राम....।' कबीर जी का तो काम बन गया। गुरुजी के दर्शन भी हो गये, उनकी पादुकाओं का स्पर्श भी मिल गया और गुरुमुख से रामनाम का मंत्र भी मिल गया। अब दीक्षा में बाकी ही क्या रहा ? कबीर जी नाचते, गाते, गुनगुनाते घर वापस आये। रामनाम की और गुरुदेव के नाम की रट लगा दी। अत्यंत स्नेहपूर्वक हृदय से गुरुमंत्र का जप करते, गुरुनाम का कीर्तन करते साधना करने लगे। जो महापुरुष जहाँ पहुँचे हैं वहाँ की अनुभूति उनका भावपूर्ण हृदय से चिन्तन करने वाले को भी होने लगती है। काशी के पण्डितों ने देखा कि यवन का पुत्र कबीर रामनाम जपता है, रामानन्द के नाम का कीर्तन करता है ! उस यवन को रामनाम की दीक्षा किसने दी ? क्यों दी ? मंत्र को भ्रष्ट कर दिया ! पण्डितों ने कबीर से पूछा–

'रामनाम की दीक्षा तेरे को किसने दी ?'

'स्वामी रामानन्दजी महाराज के श्रीमुख से मिली।'

'कहाँ दी ?'

'सुबह गंगा के घाट पर।'

पण्डित रामानन्द जी के पास पहुँचे और कहा कि आपने यवन को राममंत्र की दीक्षा देकर मंत्र को भ्रष्ट कर दिया, सम्प्रदाय को भ्रष्ट कर दिया। गुरु महाराज ! यह आपने क्या किया ?

गुरु महाराज ने कहा- 'मैंने तो किसी को दीक्षा नहीं दी।'

'वह यवन जुलाहा तो रामानन्द..... रामानन्द.... मेरे गुरुदेव रामानन्द' की रट लगाकर नाचता है, आपका नाम बदनाम करता है।'

'भाई ! मैंने उसको कुछ नहीं कहा। उसको बुलाकर पूछा जाय। पता चल जायेगा।'

काशी के पण्डित इकट्ठे हो गये। कबीर जी को बुलाया गया। गुरु महाराज मंच पर विराजमान हैं। सामने विद्वान् पण्डितों की सभा बैठी है।

रामानन्दजी ने कबीर से पूछा: 'मैंने तुझे कब दीक्षा दी ? मैं कब तेरा गुरु बना ?'

कबीर जी बोले: 'महाराज ! उस दिन प्रभात को आपने मेरे को पादुका का स्पर्श कराया और राममंत्र भी दिया, वहाँ गंगा के घाट पर।'

रामानन्द जी कुपित से हो गये। कबीर जी को अपने सामने बुलाया और गरज कर बोले: 'मेरे सामने तू झूठ बोल रहा है ? सच बोल....'

'प्रभु ! आपने ही मुझे प्यारा रामनाम का मंत्र दिया था।...'

रामानन्दजी को गुस्सा आ गया। खडाऊँ उठाकर दे मारी कबीर जी के सिर पर।

'राम... राम...राम....! इतना झूठ बोलता है।...।'

कबीर जी बोल उठे: 'गुरु महाराज ! तबकी दीक्षा झूठी तो अबकी तो सच्ची...! मुख से रामनाम का मंत्र भी मिल गया और सिर में आपकी पावन पादुका का स्पर्श भी हो गया।' स्वामी रामानन्द जी उच्च कोटि के संत-महात्मा थे। घड़ी भर भीतर गोता लगाया, शांत हो गये। फिर पण्डितों से कहा: 'चलो, यवन हो या कुछ भी हो, मेरा पहले नम्बर का शिष्य यही है।' ब्रह्मनिष्ठ सत्पुरुषों की विद्या या दीक्षा प्रसाद खाकर मिले तो भी बेड़ा पार करती है और मार खाकर मिले तो भी बेड़ा पार कर देती है।

मृत्यु

कबीर ने काशी के पास मगहर में देह त्याग दी। ऐसी मान्यता है कि मृत्यु के बाद उनके शव को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। हिन्दू कहते थे कि उनका अंतिम संस्कार हिन्दू रीति से होना चाहिए और मुस्लिम कहते थे कि मुस्लिम रीति से। इसी विवाद के चलते जब उनके शव पर से चादर हट गई, तब लोगों ने वहाँ फूलों का ढेर पड़ा देखा। बाद में वहाँ से आधे फूल हिन्दुओं ने ले लिए और आधे मुसलमानों ने। मुसलमानों ने मुस्लिम रीति से और हिंदुओं ने हिंदू रीति से उन फूलों का अंतिम संस्कार किया। मगहर में कबीर की समाधि है। जन्म की भाँति इनकी मृत्यु तिथि एवं घटना को लेकर भी मतभेद हैं, किन्तु अधिकतर विद्वान् उनकी मृत्यु संवत 1575 विक्रमी (सन 1518 ई.) मानते हैं, लेकिन बाद के कुछ इतिहासकार उनकी मृत्यु 1448 को मानते हैं।

भाषा और शैली

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी हैं। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।

कबीर सन्त, कवि और समाज सुधारक थे। उनकी कविता का एक-एक शब्द पाखंडियों के पाखंडवाद और धर्म के नाम पर ढोंग व स्वार्थपूर्ति की निजी दुकानदारियों को ललकारता हुआ आया और असत्य व अन्याय की पोल खोल धज्जियाँ उड़ाता चला गया। कबीर का अनुभूत सत्य अंधविश्वासों पर बारूदी पलीता था। सत्य भी ऐसा जो आज तक के परिवेश पर सवालिया निशान बन चोट भी करता है और खोट भी निकालता है।

हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्त्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्त्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है, तुलसीदास।

कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया-बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा फक्कड़ कि किसी फरमाइश को नाहीं कर सके। और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत ही कम लेखकों में पाई जाती है। असीम-अनंत ब्रह्मानन्द में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है। पर 'बेहद्दी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गम्भीर निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानंद का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधु और जोगिया, मुल्ला और मौलवी-सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि सुननेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।

इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। कबीर ने जिन तत्त्वों को अपनी रचना से ध्वनित करना चाहा है, उसके लिए कबीर की भाषा से ज्यादा साफ और जोरदार भाषा की सम्भावना भी नहीं है और जरूरत भी नहीं है। परन्तु कालक्रम से वह

भाषा आज के शिक्षित व्यक्ति को दुरूह जान पड़ती है। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परम्परा से चली आई विशेषताएँ वर्तमान हैं। इसका ऐतिहासिक कारण है। इस ऐतिहासिक कारण को जाने बिना उस भाषा को ठीक-ठीक समझना सम्भव नहीं है। इस पुस्तक में उसी ऐतिहासिक परम्परा के अध्ययन का प्रयास है।

कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं यथा - अरबी, फारसी, पंजाबी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्द मिलते हैं इसलिए इनकी भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है। प्रसंग क्रम से इसमें कबीरदास की भाषा और शैली समझाने के कार्य से कभी-कभी आगे बढ़ने का साहस किया गया है। जो वाणी के अगोचर हैं, उसे वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है, जो मन और बुद्धि की पहुँच से परे हैं, उसे बुद्धि के बल पर समझाने की कोशिश की गई है, जो देश और काल की सीमा के परे हैं, उसे दो-चार-दस पृष्ठों में बाँध डालने की साहसिकता दिखाई गई है। कहते हैं, समस्त पुराण और महाभारतीय संहिता लिखने के बाद व्यासदेव ने अत्यन्त अनुताप के साथ कहा था कि 'हे अधिल विश्व के गुरुदेव, आपका कोई रूप नहीं है, फिर भी मैंने ध्यान के द्वारा इन ग्रन्थों में रूप की कल्पना की है, आप अनिर्वचनीय हैं, व्याख्या करके आपके स्वरूप को समझ सकना सम्भव नहीं है, फिर भी मैंने स्तुति के द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की है। वाणी के द्वारा प्रकाश करने का प्रयास किया है। तुम समस्त-भुवन-व्याप्त हो, इस ब्रह्मांण्ड के प्रत्येक अणु-परमाणु में तुम भिने हुए हो, तथापि तीर्थ-यात्रादि विधान से उस व्यापित्व को खंडित किया है। भला जो सर्वत्र परिव्याप्त है, उसके लिए तीर्थ विशेष में जाने की क्या व्यवस्था? सो हे जगदीश, मेरी बुद्धिगत विकलता के ये तीन अपराध-अरूप की रूपकल्पना, अनिर्वचनीय का स्तुतिनिर्वचन, व्यापी का स्थान-विशेष में निर्देशकृतुम क्षमा करो।' क्या व्यास जी के महान् आदर्श का पदानुसरण करके इस लेखक को भी यही कहने की जरूरत है?

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितम्,
स्तुत्या निर्वचनीयताऽखिलगुरोदूरी कृतायन्मया।
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना,
क्षन्तव्यं जगदशी, तद् विकलता-दोषत्रयं मत्कृतम॥

वृद्धावस्था में यश और कीर्ति ने उन्हें बहुत कष्ट दिया। उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ कीं। इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुँचे। वहाँ रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहाँ के संत भगवान गोस्वामी जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान।
करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान

मूर्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए कबीरदास ने कहा है-

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।
या ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार

रूपातीत व्यंजना और खंडन मंडन

प्रेम भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु न मानने का ही यह परिणाम हुआ है कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उन्हें घमंडी, अटपटी वाणी का बोलनहारा, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के बारीक भेद को न जानने वाला, अहंकारी, अगुण-सगुण-विवेक-अनभिज्ञ आदि कहकर अपने को उनसे अधिक योग्य मानकर संतोष पाते रहे हैं। यह मानी हुई बात है कि जो बात लोक में अहंकार कहलाती है वह भगवतप्रेम के क्षेत्र में, स्वाधीनभर्तृका नायिका के गर्व की भाँति अपने और प्रिय के प्रति अखंड विश्वास की परिचायक है, जो बात लोक में दब्बूपन और कायरता कहलाती है, वही भगवतप्रेम के क्षेत्र में भगवान के प्रति भक्त का अनन्य परायण आत्मार्पण होती है और जो बातें लोक में परस्पर विरुद्ध जँचती हैं भगवान के विषय में उनका विरोध दूर हो जाता है। लोक में ऐसे जीव की कल्पना नहीं की जा सकती जो कर्णहीन होकर भी सब कुछ सुनता हो, चक्षुरहित बना रहकर भी सब कुछ देख सकता हो, वाणीहीन होकर भी वक्ता हो सकता हो, जो छोटे-से-छोटा भी हो और बड़े-से-बड़ा भी, जो एक भी हो और अनेक भी, जो बाहर भी हो भीतर भी, जिसे सबका मालिक भी कहा जा सके और सबका सेवक भी, जिसे सबके ऊपर भी कहा जा सके और सर्वमय सेवक भी जिसमें समस्त गुणों का आरोप भी किया जा सके और गुणहीनता का भी, और फिर भी जो न इन्द्रिय का विषय हो, न मन का, न बुद्धि

का। परन्तु भगवान के लिए सब विशेषण सब देशों के साधक सर्व-भाव से देते रहे हैं। जो भक्त नहीं हैं, जो अनुभव के द्वारा साक्षात्कार किए हुए सत्य में विश्वास नहीं रखते, वे केवल तर्क में उलझकर रह जाते हैं, पर जो भक्त हैं, वे भुजा उठाकर घोषणा करते हैं, 'अगुणहिं-सगुणहिं नहिं कछु भेदा' (तुलसीदास)। परन्तु तर्क परायण व्यक्ति इस कथन के अटपटेपन को वदतो-व्याघात कहकर संतोष कर लेता है।

यदि भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु मान लिया जाता तो निस्सन्देह स्वीकार कर लिया जाता कि भक्त के लिए वे सारी बातें बेमतलब हैं, जिन्हें कि विद्वान लोग बारीक भेद कहकर आनन्द पाया करते हैं। भगवान के अनिर्वचनीय स्वरूप को भक्त ने जैसा कुछ देखा है वह वाणी के प्रकाशन क्षेत्र के बाहर हैं, इसीलिए वाणी नाना प्रकार से परस्पर विरोधी और अविरोधी शब्दों के द्वारा उस परम प्रेममय का रूप निर्देश करने की चेष्टा करती है। भक्त उसकी असमर्थता पर नहीं जाता, वह उसकी रूपातीत व्यंजना को ही देखता है। भक्ति तत्त्व की व्याख्या करते-करते उन्हें उन बाह्याचार के जंजालों को साफ करने की जरूरत महसूस हुई है, जो अपनी जड़ प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतन-तत्त्व की उपलब्धि में बाधक है ! यह बात ही समाज सुधार और सम्प्रदाय ऐक्य की विधात्री बन गई है।

कबीरदास का भक्त रूप

कबीरदास का यह भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप है। इसी केन्द्र के इर्द-गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं। मुश्किल यह है कि इस केन्द्रीय वस्तु का प्रकाश भाषा की पहुँच से बाहर है। भक्ति कहकर नहीं समझाई जा सकती, वह अनुभव करके आस्वादन की जा सकती है। कबीरदास ने इस बात को हजार तरीके से कहा है। इस भक्ति या भगवान के प्रति अहैतुक अनुराग की बात कहते समय उन्हें ऐसी बहुत सी बातें कहनी पड़ी हैं, जो भक्ति नहीं है। पर भक्ति के अनुभव करने में सहायक हैं। मूल वस्तु चूँकि वाणी के अगोचर है, इसलिए केवल वाणी का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अगर भ्रम में पड़ जाना पड़ा हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वाणी द्वारा उन्होंने उस निगूढ़ अनुभवैकगम्य तत्त्व की ओर इशारा किया है, उसे ध्वनित किया गया है। ऐसा करने के लिए उन्हें भाषा के द्वारा रूप खड़ा करना पड़ा है और अरूप को रूप के द्वारा अभिव्यक्त करने की साधना करनी पड़ी है। काव्यशास्त्र के आचार्य इसे

ही कवि की सबसे बड़ी शक्ति बताते हैं। रूप के द्वारा अरूप की व्यंजना, कथन के जरिए अकथ्य का ध्वनन, काव्य-शक्ति का चरम निर्देशन नहीं तो क्या है? फिर भी ध्वनित वस्तु ही प्रधान है, ध्वनित करने की शैली और सामग्री नहीं।

कृतियां

धर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह ' बीजक ' नाम के ग्रंथ में किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं–साखी, सबद (पद), रमैनी

साखी संस्कृत के ' साक्षी', शब्द का विकृत रूप है और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियां दोहों में लिखी गयी हैं पर उसमें सोरठे का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।

सबद वे पद हैं जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।

रमैनी चौपाई छंद में लिखी गयी है इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

साधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे- 'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से भाखे और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। आप के समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'।

और कभी 'बडा हुआ तो क्या हुआ जैसै। पेड़ खजूर

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुंच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के

विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

कबीर के राम

कबीर के राम तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं।

व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी। रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढांचे (फ्रेम) में बंध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं। कबीर राम की अवधारणा को एक भिन्न और व्यापक स्वरूप देना चाहते थे। इसके कुछ विशेष कारण थे, जिनकी चर्चा हम इस लेख में आगे करेंगे। किन्तु इसके बावजूद कबीर राम के साथ एक व्यक्तिगत पारिवारिक किस्म का संबंध जरूर स्थापित करते हैं। राम के साथ उनका प्रेम उनकी अलौकिक और महिमाशाली सत्ता को एक क्षण भी भुलाए बगैर सहज प्रेमपरक मानवीय संबंधों के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालांकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि 'नाम रूप से बढ़कर है', लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संश्लिष्ट भावों को उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खांचे में बांधे जाने से रोकने का प्रयास किया।

कबीर के राम निर्गुण-सगुण के भेद से परे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग किया-'निर्गुण राम जपहु रे भाई।' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं

है। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने 'रमता राम' नाम दिया है। अपने राम को निर्गुण विशेषण देने के बावजूद कबीर उनके साथ मानवीय प्रेम संबंधों की तरह के रिश्ते की बात करते हैं। कभी वह राम को माधुर्य भाव से अपना प्रेमी या पति मान लेते हैं तो कभी दास्य भाव से स्वामी। कभी-कभी वह राम को वात्सल्य मूर्ति के रूप में मां मान लेते हैं और खुद को उनका पुत्र। निर्गुण-निराकार ब्रह्म के साथ भी इस तरह का सरस, सहज, मानवीय प्रेम कबीर की भक्ति की विलक्षणता है। यह दुविधा और समस्या दूसरों को भले हो सकती है कि जिस राम के साथ कबीर इतने अनन्य, मानवीय संबंधपरक प्रेम करते हों, वह भला निर्गुण कैसे हो सकते हैं, पर खुद कबीर के लिए यह समस्या नहीं है।

वह कहते भी हैं

"संतौ, धोखा कासूं कहिये। गुनमैं निरगुन, निरगुनमैं गुन, बाट छांड़ि क्यूं बहिसे!"

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने कबीर के राम एवं कबीर की साधना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है–' कबीर का सारा जीवन सत्य की खोज तथा असत्य के खंडन में व्यतीत हुआ। कबीर की साधना ''मानने से नहीं, ''जानने से आरम्भ होती है। वे किसी के शिष्य नहीं, रामानन्द द्वारा चेताये हुए चेला हैं। उनके लिए राम रूप नहीं है, दशरथी राम नहीं है, उनके राम तो नाम साधना के प्रतीक हैं। उनके राम किसी सम्प्रदाय, जाति या देश की सीमाओं में कैद नहीं है। प्रकृति के कण-कण में, अंग-अंग में रमण करने पर भी जिसे अनंग स्पर्श नहीं कर सकता, वे अलख, अविनाशी, परम तत्व ही राम हैं। उनके राम मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भेद-भाव के कारक नहीं हैं। वे तो प्रेम तत्व के प्रतीक हैं। भाव से ऊपर उठकर महाभाव या प्रेम के आराध्य हैं :-

'प्रेम जगावै विरह को, विरह जगावै पीउ, पीउ जगावै जीव को, जोइ पीउ सोई जीउ' - जो पीउ है, वही जीव है। इसी कारण उनकी पूरी साधना ''हंस उबारन आए की साधना है। इस हंस का उबारना पोथियों के पढ़ने से नहीं हो सकता, ढाई आखर प्रेम के आचरण से ही हो सकता है। धर्म ओढ़ने की चीज नहीं है, जीवन में आचरण करने की सतत सत्य साधना है। उनकी साधना प्रेम से आरम्भ होती है। इतना गहरा प्रेम करो कि वही तुम्हारे लिए परमात्मा हो जाए।

उसको पाने की इतनी उत्कण्ठा हो जाए कि सबसे वैराग्य हो जाए, विरह भाव हो जाए तभी उस ध्यान समाधि में पीउ जाग्रत हो सकता है। वही पीउ तुम्हारे अंतर्मन में बैठे जीव को जगा सकता है। जोई पीउ है सोई जीउ है। जब तुम पूरे संसार से प्रेम करोगे, तब संसार का प्रत्येक जीव तुम्हारे प्रेम का पात्र बन जाएगा। सारा अहंकार, सारा द्वेष दूर हो जाएगा। फिर महाभाव जगेगा। इसी महाभाव से पूरा संसार पिउ का घर हो जाता है।

सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा, सब यहि पसरा ब्रह्म पसारा।
जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहीं समाना, यह तथ कथौ गियानी।

कबीर की रचनाएँ

कबीरदास ने हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयांगम कर लिया। संत कबीर ने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। कबीरदास अनपढ़ थे। कबीरदास के समस्त विचारों में राम-नाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे। कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं-

रमैनी
सबद
साखी

इसमें वेदांत तत्त्व, हिन्दू-मुसलमान को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेमसाधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता, हज, नमाज, व्रत, आराधन की गौणता इत्यादि अनेक प्रसंग हैं। सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांत के उपदेश मुख्यतः 'साखी' के भीतर हैं, जो दोनों में हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी और पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।

यह ऐसा संसार है, जैसा सेंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार को, झूठे रंग न भूलि - कबीर
काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै राम की ओट - कबीर
हम देखत जग जात हैं, जब देखत हम जांह।
ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह - कबीर

बीजक

'बीजक' कबीरदास के मतों का पुराना और प्रामाणिक संग्रह है, इसमें संदेह नहीं। एक ध्यान देने योग्य बात इसमें यह है कि 'बीजक' में 84 रमैनियाँ हैं। रमैनियाँ चौपाई छंद में लिखी गई हैं। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी हैं। जिनके अंत में एक-एक साखी उद्धृत की गई है। साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानों इन रमैनियों को लिख रहा है और इस रमैनी-रूप व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है। जालंधरनाथ के शिष्य कुण्णपाद (कानपा) ने कहा है– 'साखि करब जालंधरि पाए', अस्तु बहुत थोड़ी-सी रमैनियाँ (नं. 3, 28 32, 42, 56, 62, 70, 80) ऐसी हैं जिनके अंत में साखियाँ नहीं हैं। परंतु इस प्रकार उद्धृत करने का क्या अर्थ हो सकता है? इस पुस्तक में मैंने 'बीजक' को निस्संकोच प्रमाण-रूप में व्यवहृत है, पर स्वय 'बीजक' ही इस बात का प्रमाण है कि साखियों को सबसे अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए, क्योंकि स्वयं किया 'बीजक' ने ही रमैनियों की प्रामाणिकता के लिए साखियों का हवाला दिया है। इसीलिए कबीरदास के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन साखियाँ है।

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। सुधार का समन्वित स्वरूप कि उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, वहीं अंधविश्वासों, रूढ, प्रथा, परम्पराओं, अंधविश्वासों पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे, भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है।

प्रचलित धारणाओं के अनुसार, मस्तमौला संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे। कबीर की जन्म तिथि में विभिन्न मतमतांतर हैं, पर विक्रमी सम्वत् के अनुसार पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, सोलहवीं का प्रारम्भ व 1455-56 के आसपास ही इनका जन्मकाल रहा। जन्मस्थान कोई काशी, कोई मगहर तथा कोई बलहरा गाँव आजमगढ के पास मानता है।

कबीर जब हुए तब देश में उथल-पुथल का समय था। मुसलमानों का आगमन, उनका आक्रमण, राज्य स्थापन और यहीं बस जाना, देश के इतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक वर्चस्व कायम करना ही नहीं बल्कि इस्लाम का प्रचार करना अधिक था। अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में कट्टर विरोधी होकर रहना, हिन्दू समाज को अपने में आत्मसात् करने की भावना से सारा हिन्दू समाज आतंकित एवं भयभीत था। मूर्तियाँ व मंदिर खण्डित होते रहे। इस विषमतापूर्ण समय में हिन्दुओं के समक्ष, अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। ऐसे में पुनरुत्थान कार्य, साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को सामने रखकर किया जाना सम्भव नहीं था। हिन्दुओं में भी विभिन्न मतमतांतर, पंथ, सम्प्रदाय बन चुके थे, जो हिन्दू समाज में अन्तर्विरोध दर्शाते थे। मानना होगा, ऐसी विपरीत स्थितियों के समय में जब हिन्दू संस्कृति, धर्म, जाति को झकझोर दिया गया था–कबीर की समन्वय साधना ने, समाज में पुनरुत्थान का कार्य किया। पुनरुत्थान भक्ति साधना से ही सम्भव था। कबीर का साहित्य इस बात का साक्षी है।

कबीर के पहले तथा समसामयिक युग में साधनाओं में सबसे प्रमुख भक्ति साधना ही है। भक्ति आन्दोलन ने भगवान की दृष्टि में सभी के समान होने के सिद्धान्त को फिर दोहराया। कबीर की भक्ति भावना तथ्य से जुड़ी है। भक्तिपथ में भक्ति के द्वारा प्राण स्पंदन देने वालों में कबीर भी प्रमुख हैं। अनेकानेक साधनाओं के अन्तर्विरोध के युग में कबीर जन्मे थे। कबीर के व्यक्तित्त्व को सभी अन्तर्विरोधों ने प्रभावित किया, इस पर कबीर ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। कबीर में परिस्थितिजन्य निर्णय की अभूतपूर्व क्षमता थी। वह आत्मचिंतन से प्राप्त निष्कर्षों को कसौटी पर कसने में कुशल थे। कबीर ने मानवतावादी तत्त्वग्राही व्यक्तित्त्व से अपने दृष्टिकोण में मजहबी, वर्गगत अहंकार तथा आचार संहिता की जड़कारा में उलझा देने वाले तत्त्वों को भुला दिया। कबीर नैतिकता से विकसित भगवतप्रेम में मानव कल्याण समझते हैं। कबीर की दृष्टि में यही मानवता का मूल आधार है। कबीर जीवन का चरम लक्ष्य परम

तत्त्व की प्राप्ति मानते हैं। इस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रमुख साधन ज्ञान और प्रेम है। कबीर के अनुसार ज्ञान से मतलब शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति को सहज रूप से ज्ञान होता है। ऐसे ही प्रेम का सहज रूप ही कबीर को मान्य है। कबीर ने आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साधना के स्तर पर समन्वय का संदेश दिया है। कबीर संत हैं-भक्त हैं। कबीर ने अपने साहित्य में, भक्ति, प्रेम व सदाचरण से भगवान को प्राप्त करने का संदेश दिया। वस्तुत: कबीर की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी। वर्तमान संदर्भों में उन्होंने आज की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए साधना नहीं की। क्योंकि कबीर के अनुसार साधना से ही मूलत: मानव व प्राणी मात्राा का आध्यात्मिक कल्याण हो सकता है।

कबीर के अनुसार पिंड और ब्रह्माण्ड से भी परे, निर्विशेष तत्त्व है, वही सबसे परे परम तत्त्व है, जिसका अनुभव होने पर भी वाणी में अवर्णनीय है। वह अलख है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड से परे का जो तत्त्व है वही हरि है। उसका कोई रूप नहीं, वह घट -घट में समाया है। कबीर ने इस तत्त्व को कई नामों से व्यक्त किया है। अलख, निरंजन, निरर्भ, निजपद, अभैपद, सहज, उनमन तथा और भी। "गुन में निरगुन, निरगुन में गुन हैं बाट छाड़ क्यो जहिए। अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।।" इसी चिंतन में कबीर कहते हैं-"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है-बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ कथौ गियानी।।" तथा-"पानी ही से हिम भया हिम है गया बिलाई।।''

प्रेम साध्य भी है-साधन भी। प्रेम स्वयं ही प्रेम का वरण करता है। अर्थात् केवल प्रेम के अनुग्रह से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम लौकिक, अलौकिक दोनों स्तर पर एक-सा रहता है। प्रेम वस्तुत: आत्मरति रूप है, अहेतुक होता है। आत्मबोध की सहज स्थिति आत्मरति है। कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम को लौकिक माध्यम से व्यक्त किया-"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर मांहि।।'' कबीर का सौन्दर्य ब्रह्म सविशेष ब्रह्म है, इससे उनके अन्त:करण में भगवान का प्रेम जागा तो कबीर ने कहा, "संतो भाई आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहे न बाँधी रे।।" कबीर के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक का भेद प्रेम की दिव्यता में बाधक नहीं है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं, अनुराग उदय, परिचय, मिलन। कबीर साहित्य में भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों तरह का रहस्यवाद मिलता

है। कबीर में भावनात्मक रहस्यवाद की प्रथम अवस्था से ही साधनात्मक रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिये कूँ सोभा नहीं–देख्या ही परमान।।" वह और भी आगे लिखते हैं–"सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया तब खुले स्वयं दुवार।।" और भी "जो काटो तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ।।"

कबीर साहित्य में साखी कबीर का जीवनदर्शन है। साखी कबीर साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश है। साखियों में कबीर का व्यक्तित्त्व समग्र रूप से व्यक्त हुआ है। "साखी आँखी ज्ञान की समुझि लेहु मनमाहिं। बिनु साखी संसार का झगड़ा छूटै नाहिं।।" कबीर साहित्य में गुरु का स्थान सर्वोपरि ईश्वर समकक्ष है। कबीर के अनुसार गुरु शिष्य को मनुष्य से देवता कर देता है। "गुरु गोविन्द दोउ खडे-काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाय।" सद्गुरु के बारे में कबीर लिखते हैं "ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जन बीसरि जाइ। जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरू मिलिया आई।।" इसके विपरीत अज्ञानी गुरु के बारे में कबीर कहते हैं–"जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंत।।" आज के संदर्भों में दार्शनिक कबीर की व्यक्त हुई कुछ-कुछ सटीक-सी लगती भावना "नां गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव। दुन्यूं बूड़े धार में–चढ पाथर की नाव।"

कबीर पर वैदिक विचारधारा, वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था, उन्होंने अपने साहित्य में एकात्मक अद्वैतवाद, ज्ञान तत्त्व, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, अध्यात्म योग, प्रणवोपासना, जन्मान्तरवाद, भगवान के विविध वैष्णवी नाम, ब्रह्म स्वरूपों में श्रद्धा, भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति, योग के भेद, माया तत्त्व आदि के माध्यम से काव्य रचना को संजोया। निर्भीक सुधारवादी संत कबीर ने, भक्ति ही क्या हर क्षेत्र में अंधविश्वासों पर चोट कर, रूढ़ परम्पराओं आडम्बरों से अलग हट, सामाजिक सुधार भरपूर किया। हिन्दू- मुसलमान दोनों के ही साम्प्रदायिक, रूढ़ग्रस्त विचारों की उन्होंने आलोचना की। अपनी सहज अभिव्यक्ति में कबीर ने लिखा–"कंकर पत्थर जोड के मस्जिद दी बनाय। ता पर मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।" इतना ही नहीं इससे भी बढकर लिखा "दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाय। यह तो खून औ बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।" ऐसे ही हिन्दुओं के अंधविश्वासों पर उन्होंने चोट की। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का कबीर ने खुला विरोध किया। "पाहन पूजे हरि मिले–तो मैं पूजूं पहार। ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।" कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी था उन्होंने बताया "मूंड मुंडाए हरि मिले, सबही लेऊँ मुंडाए।

बार-बार के मूंड ते भेड न बैकुंठ जाए।।" कबीर ने हिन्दुओं के जप-तप, तिलक, छापा, व्रत, भगवा वस्त्र, आदि की व्यर्थता बताते हुए लिखा-"क्या जप क्या तप संयमी, क्या व्रत क्या अस्नान। जब लगि मुक्ति न जानिए, भाव भक्ति भगवान।।" मरणोपरांत गंगा में अस्थि विसर्जन पर कबीर ने लिखा-"जारि वारि कहि आवे देहा, मूआ पीछे प्रीति सनेहा। जीवित पित्रहि मारे डंडा, मूआ पित्र ले घालै गंगा।।" समाज में कई अस्वस्थ लोकाचारों पर कबीर ने प्रहार किए। वे कहते हैं-यदि मन में छल कपट की गर्द भरी है तो योग भी व्यर्थ है। "हिरदे कपट हरिसँ नहिं सांचो, कहा भयो जो अनहद नाच्यौ।।"

कबीर ने ब्रह्म को करुणामय माना है। ब्रह्म माया, और जीव के सम्बन्ध में कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन है। कबीर निर्गुणोपासक थे। उन्होंने राम के गुणातीत, अगम्य, अगोचर, निरंजन ब्रह्म का वर्णन किया है। मानना होगा भक्ति आन्दोलन के सुधारवादी भक्त कवियों में कबीर का अपना अलग ही स्थान व नाम है। भगवा वस्त्र पहन कर जंगलों की खाक छानने के पक्ष में कबीर नहीं थे। उन्होंने धर्म एवं भक्ति में दिखावे को त्याग, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा आदि को धर्म परिधि से बाहर रखा। कबीर कहते हैं, "काम-क्रोध, तृष्णा तजै, ताहि मिले भगवान।।" राम अर्थात् उनके ब्रह्म में अपने खुद के समर्पण की चरमसीमा देखने योग्य है। "लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।'' कबीर के बारे में किसी ने यह सही लिखा प्रतीत होता है, "ज्ञान में कबीर परम हंस, कल्पना में योगी, और अनुभूति में प्रिय के प्रेम की भिखारिणी पतिव्रता नारी हो।'' कबीर में अतिवाद कहीं भी नही है। ब्रह्म परमसत्ता को कबीर ने सहजता से सर्वव्यापी बताते हुए कहा-"ना मैं गिरजा ना मैं मंदिर, ना काबे कैलास में। मौको कहाँ ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।।''

कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा। कबीर ने किसी धर्म विशेष एवं दर्शन की पताका ऊँची नहीं की। वस्तुत: उन्होंने तो अपने को मानवीय तत्त्वों से सम्बद्ध रखा। धर्म व सुधार के नाम पर कबीर ने जनता को उलझाया नहीं, उन्होंने तो खण्डन कर उलझनों से दूर रखा। जनमानस को अभेद की ओर प्रेरित कर भ्रम-माया से दूर रहने की प्रेरणा दी, इसीलिए कबीर मानवतावादी सुधारक माने जाते हैं। कबीर ने ईश्वर प्रेम, भक्ति व साधना में माया को बाधक माना। कबीर ने कहा माया आकर्षक व मनमोहक है। माया आचरण के कारण ही आत्मा अपने परमात्म रूप को नहीं पहचान पाती। माया ब्रह्म से मिलने नहीं देती। "कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम। मुख कडया को कुमति, कहने न देई राम।।

पंद्रहवीं शताब्दी में संतकाल के प्रारंभ में सारा भारतीय वातावरण क्षुब्ध था। बहुत से पंडित जन इस क्षोभ का कारण खोजो में व्यस्त थे और अपने- अपने ढ़ंग पर समाज और धर्म को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे। इस अराजकता का कारण इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इसके बाद देश के उथल- पुथल वातावरण में महात्मा कबीर ने काफी संघर्ष किया और अपने कड़े विरोधों तथा उपदेशों से समाज को बदलने का पूरा प्रयास किया। सांप्रदायिक भेद- भाव को समाप्त करने और जनता के बीच खुशहाली लाने के निमित्त संत- कबीर अपने समय के एक मजबूत स्तंभ साबित हुए। वे मूलत: आध्यात्मिक थे। इस कारण संसार और सांसारिकता के संबंध में उन्होंने अपने काल में जो कुछ कहा, उसमें भी आध्यात्मिक स्वर विशेष रुप से मुखर है।

इनके काजी मुल्ला पीर पैगम्बर रोजा पछिम निवाजा।
इनके पूरब दिसा देव दिज पूजा ग्यारिसि गंगदिवाजा।
कहे कबीर दास फकीरा अपनी राह चलि भाई।
हिंदू तुरुक का करता एकै ता गति लखी न जाई।

व्यवहार में भेद-भाव और भिन्नता रहने के कारण सांप्रदायिक कटुता बराबर बनी रही। कबीर दास इसी कटुता को मिटाकर, भाई चारे की भावना का प्रसार करना चाहते थे। उन्होंने जोरदार शब्दों में यह घोषणा की कि राम और रहीम में जरा भी अंतर नहीं है –

कबीर ने अल्लाह और राम दोनों को एक मानकर उनकी वंदना की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अध्यात्म के इस चरम शिखर की अनुभूति कर ली थी, जहाँ सभी भिन्नता, विरोध- अवरोध तथा समग्र द्वैत- अद्वैत में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। प्रमुख बात यह है कि वे हिंदू- मुसलमान के जातीय और धार्मिक मतों के वैमनस्य को मिटाकर उन्हें उस मानवीय अद्वैत धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मानवता और आध्यात्म के एक महान नेता के समान प्रयत्नशील है। उनका विश्वास था कि "सत्य के प्रचार से ही वैमनस्य की भावना मिटाई जा सकती है। इस समस्या के समाधान हेतु, कबीर ने जो रास्ता अपनाया था, वह वास्तव में लोक मंगलकारी और समयानुकूल था। अल्लाह और राम की इसी अद्वैत अभेद और अभिन्न भूमिका की अनुमति के माध्यम से उन्होंने हिंदू- मुसलमान दोनों को गलत कार्य पर चलने के लिए वर्जित किया और लगातार फटकार लगाई।

ना जाने तेरा साहब कैसा है,
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है,
पंडित होय के आसन मारे लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।

हिंदू- मुसलमान दोनों का विश्वास भगवान में है। कबीर ने इसी विश्वास के बल पर दोनों जातियों को एक करने का प्रयत्न किया। भाईचारे की भावना उत्पन्न करने की चेष्टा की।

सबद सरुपी जिव- पिव बुझों,
छोड़ो भय की ढेक।
कहे कबीर और नहिं दूज।
जुग- जुग हम तुम एक।

कबीर शब्द- साधना पर जोर दे रहे हैं। इनका कथन है, तुम श्रम तज कर शब्द साधना करो और अमृत रस का पान करो, हम तुम कोई भेद नहीं हैं, हम दोनों इसी एक पिता की संतान हैं। इसी अर्थ में कबीर दास हिंदू और मुसलमान के स्वयं विधायक हैं।

बड़े कठोर तप, त्याग, बलिदान और संकल्प शक्ति को अपना कवच बनाकर भारत की जनता ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त कर ली, लेकिन इसके साथ ही सांप्रदायिकता की लहर ने इस आनंद बेला में विष घोल दिया। भारत का विभाजन हुआ। इस विभाजन के बाद असंख्य जानें गई, लाखों घर तबाह हुए और बूढ़े, बच्चे, जवान, हिंदू, मुस्लिम सब समाज विरोधी तत्त्वों के शिकार हुए। इन तमाम स्थितियों से निबटने के लिए मानवतावादी सुधार की आवश्यकता थी, यह काम अध्यात्म से ही संभव था। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन अल्प है। इस अवधि का सदुपयोग प्रभु स्मरण में करना चाहिए। सांसारिक हर्ष- विषाद को विशेष महत्व नहीं देना चाहिए।

पंडितों का ढोंगपूर्ण रवैया देखकर उन्हें चेतावनी देते हुए कहते हैं –

पंडित होय के आसन मारे, लंबी माला जपता है,
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो रव भी साहब लगता है,
ऊँचा निचा महल बनाया, गहरी नेव जमाता है,
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है।

कबीर शोषणकर्ता को रोषपूर्ण आगाह करते हैं कि भगवान के दरबार में न्याय होने पर उन्हें अपने किए का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा। दूसरी ओर निरीह जनता को वे समझाते हुए कहते हैं –

कबीर नौवति आपणी, दिन दस लेहु बजाई,
ऐ पुर पारन, एक गली, बहुरि न देखें आई।

महात्मा कबीर कहते हैं कि यह जीवन कुछ ही दिनों के लिए मिला है, अतः इसका उपयोग सार्थक ढंग से खुब आनंदपूर्वक करना चाहिए।

जो करेंगे सो भरेंगे, तू क्यों भयो उदास,
कछु लेना न देना, मगन रहना,
कहे कबीर सुनो भाई साधो,
गुरु चरण में लपटे रहना।

"महात्मा कबीर साहब संतप्त जनता को समझाते हुए कहते हैं कि कर्तव्य निर्विकार रुप से करो, व्यर्थ के प्रपंच में मत पड़ो, सर्वदा अपने मन को गुरु में लगाए रहो।"

जीवित ही कछु कीजै,
हरि राम रसाइन पीजै।

महात्मा कबीर दास ने पीड़ित जनता के दुख- दर्द को दूर करने के लिए "राम रसायन" का आविष्कार किया। कबीर साहब ने पहली बार जनता को उसकी विपत्रता में ही खुश रहने का संदेश दिया।

कबीर मध्यकाल के क्रांतिपुरुष थे। उन्होंने देश के अंदर और बाहर की परिस्थितियों पर एक ही साथ धावा बोलकर, समाज और भावलोक को जो प्रेरणा दी, उसे न तो इतिहास भुला सकता है और न ही साहित्य इतनी बलिष्ठ रुढियों पर जिस साहस और शक्ति से प्रहार किया, यह देखते ही बनता है।

संतों पांडे निपुण कसाई,
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई,
आतमराम पलक में दिन से, रुधिर की नदी बहाई।

कबीर ने समाज की दुर्बलता और अद्योगति को बड़ी करुणा से देखकर, उसे ऊपर उठाने के मौलिक प्रयत्न किया। उन्होंने भय, भर्त्सना और भक्ति जैसे अस्त्रों का उपयोग राजनैतिक विभिषिकाओं और सामाजिक विषमताओं जैसे शत्रु को परास्त करने के लिए किया। कबीर साहब यह बात समझ चुके थे कि इन शत्रुओं के विनाश होने पर ही जनता को त्राण मिल सकता है। अतः उनका सारा विरोध असत्य, हिंसा और दुराग्रह से था। उनका उद्देश्य जीवन के प्रति आशा पैदा करना था।

कबीर का तू चित वे, तेरा च्यता होई,
अण च्यता हरि जो करै, जो तोहि च्यंत नहो।

महात्मा कबीर शोकग्रस्त जनता को सांत्वना देते हैं "तुम चिंता क्यों करते हो ? सारी चिंता छोड़कर प्रभु स्मरण करो।"

केवल सत्य विचारा, जिनका सदा अहार,
करे कबीर सुनो भई साधो, तरे सहित परिवार।

उनके अनुसार जो सत्यवादी होता है, उसका तो भला होता ही है, साथ- साथ उसके सारे परिवार का भी भला होता है और वे लोग सुख पाते हैं। वह कहते हैं, सारे अनर्थों की जड़, असत्य और अन्याय है, इनका निर्मूल होने पर ही शुभ की कल्पना की जा सकती है। इसी अध्यात्म का सहारा लेकर हिंदू- मुस्लिम के भेद- भाव को मिटाने का प्रयत्न किया था, इसके साथ- साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। आज के परिवेश में भी इन्हीं उपायों की आवश्यकता है।

सांप्रदायिक मतभेदों या दंगों का कारण अज्ञान या नासमझी है। इस नासमझी या अज्ञान को दूर करने के लिए कबीर दास द्वारा बताए गए उपायों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। कबीर की वाणी ही समस्त समस्याओं का निवारण करने में समर्थ है।

ऊँच- नीच, जाति- पाति का भेद मिटाकर सबको एक समान सामाजिक स्तर देने का कार्य किया। आज के संदर्भ में भी इसी चीज की जरुरत है।

गुप्त प्रगट है एकै दुधा, काको कहिए वामन- शुद्रा
झूठो गर्व भूलो मति कोई, हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई॥

वर्तमान समस्याएँ चाहे सांप्रदायिक हो चाहे वैयक्तिक, सबका समुचित समाधान नैतिक मूल्य प्रस्तुत करते हैं।

कबीर दर्शन में जाति- धर्म का कोई बंधन स्वीकार नहीं है। सारे अलगाववादी विधानों को तोड़कर वह एक शुद्र मानव जाति का निर्माण करता है, इसलिए आज के संदर्भ में इसकी उपयोगिता बढ़ गई है।

जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदूओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थी। कोई वेद का दिवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बनाए फिर रहा था, तो कोई दान- पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन ही में सब कुछ पाना चाहता था तथा कुछ लोग तंत्र- मंत्र, औषधादि की करामात को अपनाए हुआ था।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,
इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा- सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास ने जब अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण के अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्यभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन- साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख- आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास आध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे –

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढि चलें, एक बंधे जंजीर।

अपने कर्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज में व्याप्त कुरीतियों को कम करने और जन- समुदाय में सुख- शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक औषधि मानते हैं, वह है आध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रुप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण- व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस- पास, तरह- तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा॥

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे ओर चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर- घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा॥

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दुख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद- भाव, ऊँच- नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्यभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों में आग लगी, दहेज मौत, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी

नहीं मिलती। इसके अलावे अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है।"

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि "नीति- विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता। नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दुर्व्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान-शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है–पतन, निराशा और दुख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर- पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं–

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्डू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति॥

इस नाजुक परिस्थिति से आध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर- साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहरी शिक्षा है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है। अत: आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रुप से सक्षम है।

एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्रह्ममन को सुद्र।
हमहुं राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर का उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्वकल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था।

आधुनिक संदर्भ में कबीर का कहा गया उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी। अत: आज भी कबीर साहित्य की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरुरी है कि

इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभांवित हो सकें।

सांप्रदायिक तनाव की स्थिति आज देश में सर्वाधिक चिंतनीय है। देश में संप्रदाय के नाम पर लोगों को आपस में खूब लड़ाया जाता है। राजनैतिक दल एवं राजनेता स्वयं जातिवाद या सांप्रदायवाद के प्रतीक बन गए हैं। आज हर वर्ष देश के कुछ भागों में सांप्रदायिक दंगे का भड़क जाना और सैकड़ों बेगुनाहों का खून बह जाना, सामान्य बात हो गई है।

1947 ई. में सांप्रदायिकता को आधार बनाकर देश का विभाजन कर दिया गया। यही सांप्रदायिकता की आग लगातार बढ़ती ही गई, अब तो स्थिति इतनी अधिक उत्तेजक हो गई है कि इस ओर सभी बुद्धिजीवियों और शुभ- चिंतकों का ध्यान आकृष्ट होने लगा है। प्रत्येक साल कही- न- कहीं दंगा होता रहता है। हजारों लोग हर दंगे में मारे जाते हैं। हजारों गिरफ्तारियाँ होती हैं। लाखों- करोड़ों की संपत्ति जला दी जाती है। यह सब आपसी धार्मिक मतभेदों की वजह से होता है। आवश्यकता है कि सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखकर, भारत के समस्त नागरिकों को बंधुत्व की भावना से सहयोगपूर्वक रहने के प्रति जागरुक किया जाए।

हिंदू तुरुक की एक राह में, सतगुरु है बताई।
कहै कबीर सुनहू हो संतों, राम न कहेउ खुदाई॥

संत महात्मा कबीर ने सांप्रदायिकता का विरोध कड़े शब्दों में किया है। कबीर साहब से अधिक जोरदार शब्दों में सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

सोई हिंदू सो मुसलमान, जिनका रहे इमान।
सो ब्राह्मण जो ब्राह्म गियाला, काजी जो जाने रहमान॥

महात्मा के अनुसार सच्चा हिंदू या मुसलमान वही है, जो इमानदार है और निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करता है। सारे अनर्थों की जड़ यही बेईमानी है। आदमी बईमान हुआ, तब सब अनर्थ कामों की शुरुआत हो गई। आज समाज में चारों तरफ बेईमानी के कारण ही वातावरण दुखी और असहनीय हो रहा है। आज का मनुष्य एक ओर ईश्वर की पूजा करता है और दूसरी ओर मनुष्य का तिरस्कार करता है। प्रेम के महत्व को कबीर साहब इस प्रकार बताते हैं –

पोथी पढि- पढि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर के अनुसार प्रेम ही ऐसा तत्त्व है, जो पारस्परिक मैत्री का भाव लाता है और कटुता को समाप्त करता है।

काहि कबीर वे दूनों भूले, रामहि किन्हु न पायो।
वे खस्सी वे गाय कटावै, वादाहि जन्म गँवायो॥
जेते औरत मरद उवासी, सो सब रुप तुम्हारा।
कबीर अल्ह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥

हिंदू- मुस्लिम एकता के लिए कबीर के उपदेश और उनके द्वारा किया गया कार्य आज सामान्य लोगों के अंदर फैलाने और बताने की आवश्यक है। कबीर ने धार्मिक रुढ़ियों उपासना संबंधी मूढ़ मान्यताओं तथा मंदिर- मस्जिद विषयक अंध आस्थाओं के अंतर्विरोधों को निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

हिंदू कहे वह राम हमारा, तुरुक कहे रहिमाना
सत गहे, सतगुरु को चीन्हे, सतनाम विश्वासा,
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।

वे कहते, प्रत्येक मानव को गुरु भक्ति और साधन का अभ्यास करना चाहिए। इस सत्य की प्राप्ति से सब अवरोध समाप्त हो जाते हैं।

जो सुख राम भजन में, वह सुख नहीं अमीरी में।

सुख का आधार धन- संपत्ति नहीं है। इसके अभाव में भी मानव सुख-शांति का जीवन जी सकता है।

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

वे कहते हैं, धरती पर सभी कष्टों की जड़ वासना है, इसके मिटते ही चिंता भी समाप्त हो जाती है और शांति स्वमेव आने लगती है। कबीर के कहने का तात्पर्य है कि पूजा- पाठ साधना कोई शुष्क चीज नहीं है, बल्कि इसमें आनंद है, तृप्ति है और साथ ही सभी समस्याओं का समाधान। इसलिए इसको जीवन में सर्वोपरि स्थान देना चाहिए। साधना के प्रति लोगों के हृदय में आकर्षण भाव लाने हेतु उन्होंने अपना अनुभव बताया।

इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी में सिरजन हारा,
इस घट अंतर सात समुदर इसी में नौ लख तारा।

गुरु के बताए साधन पर चलकर ध्यान का अभ्यास करने को वे कहते हैं। इससे दुखों का अंत होगा और अंतर प्रकाश मिलेगा। गुरु भक्ति रखकर साधन पथ पर चलनेवाले सभी लोगों को आंतरिक अनुभूति मिलती है।

कबीर का प्रेम

कंलि खोटा जग अंधेरा, शब्द न माने कोय,
जो कहा न माने, दे धक्का दुई और।

महात्मा कबीर किसी भी स्थिति में हार मानने वाले नहीं थे। वे गलत लोगों को ठीक रास्ते पर लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दो- चार धक्के खाना भी पसंद था। इस प्रकार कहा जाता है कि कबीर लौह पुरुष थे। वे मानव को प्रेम को अपनाने कहते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर का दूसरा नाम प्रेम है। इसी तत्त्व को अपनाने पर जीवन की बहुत सारी समस्याएँ स्वतः सुलझ जाती है।

मैं कहता सुरजनहारी, तू राख्यो अरुझाई राखे

कबीर साहब सदा सीधे ढ़ग से जीवन जीने की कला बताते थे। उनका कहना था कि प्रेम के अभाव में यह जीवन नारकीय बन जाता है।

कबीर प्याला प्रेम का अंतर दिया लगाया,
रोम- रोम से रमि रम्या और अमल क्या लाय,
कबीर बादल प्रेम का हम पर वरस्या आई,
अतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन आई।

यही 'प्रेम' सब कुछ है, जिसे पान कर कबीर धन्य हो गये। इस बादल रुपी प्रेम की वर्षा में स्नान कर कबीर की आत्मा तृप्त हो गई और उसका मन आनंद विभोर हो उठा। वे कहते हैं, प्रेम ही सर्व है। उसी के आधार पर व्यक्ति एक दूसरे के साथ बंधुत्व की भावना को जागृत कर सकता है। आज के परिवेश में इसी बंधुत्व की भावना के प्रसार की नितांत आवश्यकता है। कबीर साहब की वाणी आज भी हमें संदेश दे रही है कि संसार में कामयाब होने का एक मात्रा मार्ग धर्म और समाज की एकता है।

संत कबीर स्वयं ऐसे परिवार में जन्में थे, जो तत्कालीन समाज व्यवस्था में अस्पृश्य था। उन्होंने स्वयं वर्ण- व्यवस्था की कटुताओं को झेला था। कबीर साहब मध्यकाल में ब्राह्मण- व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह के सबसे बड़े नेता माने जाते हैं। आपने सर्वप्रथम भक्ति परंपराओं का प्रचार किया, जोकि ब्राह्मण- व्यवस्था के विरुद्ध थी। आपने जिस तरह ब्राह्मण- व्यवस्था के गढ़ में काशी में रहकर, इस व्यवस्था पर प्रहार करते रहे, यह अति सराहनीय माना जाता है। यहाँ के ब्राह्मणों ने तपस्थली को ब्राह्मण और क्षत्रियों तक ही सीमित कर दिया था। कबीर साहब ने इसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने वहाँ, 'हरिजन सई न जाति' भक्त के समान कोई दूसरी जाति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट

तौर पर कहा कि जो भक्त है, वह यदि अस्पृश्य है, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। उन्होंने इस प्रकार भक्ति के हथियार से वर्णाश्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया। वह नया मूल्य स्थापित करते हुए कहते हैं –

"जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान॥"

तत्कालीन समाज व्यवस्था में जो व्यक्ति स्वयं नहीं पाता था, उसे अंग्रेज विचारक कीलिन विल्सन ने "आउट साइडर" कहा था। भक्ति काल का प्रत्येक कवि "आउट साइडर" कहलाया, क्योंकि ये कवि रुढियों, अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं एवं परंपराओं को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब मध्य काल के ऐसे पहले कवि थे, जिन्हें "आउट साइडर" कहा गया। कबीर लोक, वेद, शास्त्र तथा मंत्र को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब को संग्राम का योद्धा कहा जाए, तो अच्छा होगा। कबीर का मानना था कि अगर भगवान को वर्ण- विचार कहना होता, तो वह जन्म से ही तीन विभाजक खींच देते। उत्पत्ति की दृष्टि से समस्त जीव समान है।

"जौ पै करता बरण बिचारै।
तौं जनमत तीनि डांडी किन सारे॥
उत्पत्ति ब्यंद कहाँ थै आया, जोति धरि अरु लगी माया।
नहिं कोइ उँचा नहिं कोइ नीचे, जाका लंड तांही का सींचा॥
जो तू वामन वमनीं जाया, तो आने बाट हवे काहे न आया।
जो तू तुरक तुरकनीं जाया तो भीतरि खतना क्यूनें करवाया॥

पंडित को वह वटूक्ति सुनाते हुए कहते हैं, जैसे गदहा चंदन का भार वहन करता है, पर उसकी सुगंधि से अभिमूढ नहीं होता। उसी तरह पंडित भी वेद पुराण पढ़कर राम नाम के वास्तविक तत्त्व नहीं पाता।

पांडे कौन कुमति तोहि लगि, तू राम न जपहि अभागा।
वेद पुराण पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा॥
राम नाम तत समझत नाहीं, अति अरे मुखि धारा।
वेद पढता का यह फल पाडै राबधटि देखौ रामा॥

कबीर के अनुसार ब्राह्मण को तत्त्वानुभव नहीं होने के कारण उसकी बात कोई नहीं मानता है।

पंडित संति कहि रहे, कहा न मानै कोई।
ओ अशाध एका कहै, भारी अचिरज होई॥

कबीर साहब ब्राह्मण को जाति- पाति बाँटने का जिम्मेदार मानते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण का ज्ञान बासी है और उसका व्यक्तित्त्व पाखंडपूर्ण है –

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात।
दुल्हा- दुल्हिन मिल गए, फीको पड़ी बारात।

तत्कालीन ब्राह्मण समाज के लोला ज्ञान पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं –

चार यूं वेद पढ़ाई करि, हरि सूंन लाया हेत।
बाँलि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत॥

कबीर के अनुसार मनुष्य जन्म से समान है, लेकिन समाज ने उसे रुढियों में जकड़ लिया है तथा भाँति- भाँति की क्यारियाँ गढ़ ली गई है। इस प्रकार एक क्यारी का बिखरा, दूसरी क्यारी में नहीं जा सकता है, इस प्रकार कवि जातिवाद और छुआ- छूत सबको पाखंड मानते हैं और कहते हैं –

पाड़ोसी सू रुसणां, तिल- तिल सुख की होणि।
पंडित भए सरखगी, पाँणी पीवें छाँणि॥

पंडित सरावगी हो गए हैं और पानी को छान कर पीने लगे हैं, अर्थात वे ढ़ोंग करते हैं और दूसरे के धर्म की अनावश्यक नुक्ता- चीनी और छान- बीन करते रहते हैं। आपके अनुसार पंडित का गोरख धंधा बटमारी और डकैती है। पंडित ने इस संसार को पाषाण- मूर्तियों से भर दिया है और इसी के आधार पर पैसा कमाता है।

काजल केरि कोठरी, मसिके कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट॥

कबीर साहब जात- पात की तुलना में कर्म को श्रेष्ट मानते हैं –

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी उँच न होई
सोवन कलस सुरै भरया, साधू निंधा सोई॥

अपनी पूरी जिंदगी में कबीर ने सामाजिक कुरीतियों के झाड़- झंखाड़ को साफ करने और उच्चतर मानव का पथ प्रशस्त करने का प्रयास किया।

कबीर साहब का भक्ति में अत्यधिक विश्वास था। भक्ति से युक्त व्यक्ति न तो ब्राह्मण होता है और न चंडाल, बल्कि वह सिर्फ भक्त होता है। कबीर साहब ने समाज के आपसी मतभेद को मिटाकर इस प्रकार का संदेश दिया है, जैसे हल्दी पीली होती है और चूना श्वेत, पर दोनों मिलकर अपना रंग मिटाकर लाल रंग की होली में परिणत हो जाते हैं –

कबीर हरदी पीयरी, चुना उजल भाय।
राम सनेही यूँ मिले, दन्यूं बस गमाय॥

कबीर की उपर्युक्त रमैनी के अनुसार, राम के भक्त विभिन्न जातियों का परित्याग कर एकाकार हो जाते हैं और वे अपने विभिन्न सांप्रदायिक भाव ईश्वर प्रेम की लालिमा में समाहित कर देते हैं। इस प्रकार कावा और काशी या राम और रहीम का भेद मिट जाता है, सब एक ही हो जाते हैं –

कावा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोठ चून मैदा भया, बैठो कबीरा जीम॥

इस प्रकार कबीर साहब भक्ति के द्वारा सामाजिक पाथेवय को मिटाते हैं और मन के विधान का अतिक्रमण करने का उपदेश देते हैं।

कबीर रचनावली

कबीरदास की वाणियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं, पर उनमें सबसे अच्छा सुसंपादित संस्करण अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'कबीर' रचनावली' है। यह भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा का ही प्रकाशन है। कबीरदास के पदों में जितने संबोधन हैं उन सबका एक-न- एक खास प्रयोजन है। जब उन्होंने 'अवधू' या 'अवधूत' को पुकारा है तो यथासंभव अवधूत की ही भाषा में उसी के क्रिया-कलाप की आलोचना की है। इस प्रसंग में उनकी युक्ति और तर्कशैली पूर्णरूप से अवधूत-जैसी रहती है। जब वे पंडित या पाँडे को संबोधित करते हैं तो वहाँ भी उनका उद्देश्य पंडित की ही भाषा में पंडित की ही युक्तियों के बल पर उसके मत को निराश करना होता है। इसी तरह मुल्ला, काजी आदि संबोधनों को भी समझना चाहिए। जब वे अपने-आपकों या संतों को संबोधित करके बोलते हैं तब वे अपना मत प्रकट करते जान पड़ते हैं। वे अपने मत के मानने वाले को ही 'संत' या साधु कहते हैं। साधारणत: वे 'भाई' संबोधन के द्वारा साधारण जनता से बात करते हैं और जब कभी वे 'जोगिया' को पुकार उठते हैं तो स्पष्ट जी जान पड़ता है कि इस भले आदमी के संबंध में उनकी धारणा कुछ बहुत अच्छी नहीं थी। यह दावा किया गया है कि गुरु-परपरा की जानकारी रखने वाले लोग कबीरदास के आत्म-संबोधन में एक निश्चित संकेत की बात बताया करते हैं।

अवधू और अवधूत

भारतीय साहित्य में यह 'अवधू' शब्द कई संप्रदायों के सिद्ध आचार्यों के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। साधारणत: जागातिक द्वंद्वों से अतीत, मानापमान-विवर्जित, पहुँचे हुए योगी को अवधूत कहा जाता है। यह शब्द मुख्यतया तांत्रिकों, सहजयानियों और योगियों का है। सहजयान और वज्रयान नामक बौद्ध तांत्रिक मतों में 'अवधूती वृत्ति' नामक एक विशेष प्रकार की यौगिक वृत्ति का उल्लेख मिलता है। आठवीं शताब्दी के बाद से नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी आदि विद्यायतनों में जो बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ वह एक नवीन ढंग का तांत्रिक और योगक्रियामूलक धर्म था। इस नवीन तांत्रिक मत में तीन प्रधान मतों का संधान पाया जाता है-सहजयान, वज्रयान और कालचक्रयान। इन मतों की अधिकांश पुस्तकें आज तिब्बती अनुवाद के रूप में ही सुरक्षित हैं। स्व. हरप्रसाद शास्त्री ने 'चर्याचयीविनिश्चय', 'दोहाकोष', 'अद्वयवज्रसंग्रह' और 'गुह्य-समाजतंत्र' आदि पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सहजयान और वज्रयान में बहुत कुछ समानता है। शास्त्री जी ने जो चर्यापद प्रकाशित कराए हैं उनमें आर्यदेव, भूसुक, कान्ह, सरह, लुई आदि आचार्यों के पद हैं, जिन्हें तिब्बती साहित्य में सिद्धाचार्य कहा गया है। ये आचार्यगण सहजावस्था की बात करते हैं। सहजावस्था को प्राप्त करने पर ही साधक अवधूत होता है।

तंत्र-ग्रंथों में चार प्रकार के अवधूतों की चर्चा है- ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, भक्तावधूत और हंसावधूत। हंसावधूतों में जो पूर्ण होते हैं वे परमहंस और जो अपूर्ण होते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं। परंतु कबीरदास ने न तो इतने तरह के अवधूतों की कहीं कोई चर्चा ही की है और न ऊपर 'निर्वाण-तंत्र' के बताए हुए अवधूत से उनके अवधूत की कोई समता ही दिखाई है। 'हंसा' की बात कबीरदास कहते जरूर हैं पर वे हंस और अवधूत को शायद ही कहीं एक समझते हों। वे बराबर हंस या पक्षी शुद्ध और मुक्त जीवात्मा को ही कहते हैं। इसी भाव को बताने के लिए भर्तृहरि ने कहा है कि इस अवधूत मुनि की बाह्य क्रियाएँ प्रशमित हो गई हैं। वह न दु:ख समझता है, न सुख को सुख। वह कहीं भूमि पर सो सकता है कहीं पलंग पर, कहीं कंथा धारण कर लेता है कहीं दिव्य वसन, कहीं मधुर भोजन पाने पर उसे भी पा लेता है। 'किंतु कबीरदास इस प्रकार योग में भोग को पंसद नहीं करते। यद्यपि इन योगियों के संप्रदाय के सिद्धों को ही कबीर अवधूत कहते हैं तथापि वे साधारण योगी अवधूत के फर्क को बराबर याद रखते हैं। साधारण योगी के प्रति उनके मन में वैसा आदर का भाव

नहीं है जैसा अवधूत के बारे में है। कभी-कभी उन्होंने स्पष्ट भाषा में योगी को और अवधूत को भिन्न रूप से याद किया है। इस प्रकार कबीरदास का अवधूत नाथपंथी सिद्ध योगी है।

प्रसिद्ध है कि एक बार काशी के पंडितों में द्वैत और अद्वैत तत्त्व का शास्त्रार्थ बहुत दिनों तक चलता रहा। जब किसी शिष्य ने कबीर साहब का मत पूछा तो उन्होंने जवाब में शिष्य से ही कई प्रश्न किए। शिष्य ने जो उत्तर दिया उसका सार-मर्म यह था कि विद्यमान पंडितों में इस विषय में कोई मतभेद नहीं है कि भगवान, रूप, रस, गंध एवं स्पर्श से परे हैं, गुणों और क्रियाओं के अतीत हैं, वाक्य और मन के अगोचर हैं। कबीरदास ने हसँकर जवाब दिया कि भला उन लड़ने वाले पंडितों से पूछो कि भगवान रूप से निकल गया, रस से निकल गया, रस से अतीत हो गया, गुणों के ऊपर उठ गया, क्रियाओं की पहुँच के बाहर हो रहा, वह अंत में आकर संख्या में अटक जाएगा? जो सबसे परे है वह क्या संख्या के परे नहीं हो सकता? यह कबीर का द्वैताद्वैत-विलक्षण समतत्त्ववाद है।

निरंजन कौन है?

मध्ययुग के योग, मंत्र और भक्ति के साहित्य में 'निरंजन' शब्द का बारम्बार उल्लेख मिलता है। नाथपंथ में भी 'निरंजन' शब्द खूब परिचित है। साधारण रूप में 'निरंजन' शब्द निर्गुण ब्रह्म का और विशेष रूप से शिव का वाचक है। नाथपंथ की भाँति एक और प्राचीन पंथ भी था, जो निरंजन पद को परमपद मानता था। जिस प्रकार नाथपंथी नाथ को परमाराध्य मानते थे, उसी प्रकार ये लोग 'निरंजन' को। आजकल निरंजनी साधुओं का एक सम्प्रदाय राजपूताने में वर्तमान है। कहते हैं, इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी निरानंद निरंजन भगवान (निर्गुण) के उपासक थे।

बंगाल के पश्चिमी हिस्सों तथा बिहार के पूर्वी जिलों में आज भी एक धर्ममत है, जिसके देवता निरंजन या धर्मराज हैं। एक समय यह सम्प्रदाय झारखण्ड और रीवाँ तक प्रचलित था। बाद में चलकर यह मत कबीर सम्प्रदाय में अंतर्भुक्त हो गया और उसकी सारी पौराणिक कथाएँ कबीर मत में गृहीत हो गई, परन्तु उनका स्वर बदल गया। नाथपंथ में निरंजन की महिमा खूब गाई गई है। हठयोगी जब नादानुसंधान का सफल अभ्यासी हो जाता है तो उसके समस्त पाप क्षीण हो जाते हैं, उसके चित्त और मारुत निरंजन में लीन हो जाते हैं। यह योगी का परम साध्य है, क्योंकि जब तक ज्ञान निरंजन के साक्षात्कार तक नहीं उठता तभी तक इस संसार के विविध जीवों और नाना पदार्थों में भेद-दृष्टि बनी हुई है।

कबीर के दोहे

यहाँ कबीरदास के कुछ दोहे दिये गये हैं।

(1) साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं ।

व्याख्या– कबीर दास जी कहते हैं कि संतजन तो भाव के भूखे होते हैं, और धन का लोभ उनको नहीं होता। जो धन का भूखा बनकर घूमता है वह तो साधु हो ही नहीं सकता।

(2) जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी वाणी होय॥

व्याख्या– संत शिरोमणि कबीरदास कहते हैं कि जैसा भोजन करोगे, वैसा ही मन का निर्माण होगा और जैसा जल पियोगे वैसी ही वाणी होगी अर्थात् शुद्ध-सात्विक आहार तथा पवित्र जल से मन और वाणी पवित्र होते हैं इसी प्रकार जो जैसी संगति करता है वैसा ही बन जाता है।

कबीरदास जी के कुछ प्रसिद्ध दोहे

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।।
ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोये।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होए।।
लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।
पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट ।।
बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर।।
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन देखा आपना, मुझ से बुरा न कोय।।
तिनका कबहुँ ना निंदये, जो पाँव तले होय।
कबहुँ उड़ आँखो पड़े, पीर घनेरी होय ।।
दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दु:ख काहे को होय।।
माटी कहे कुमार से, तू क्या रोंदे मोहे।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रोंदुंगी तोहे।।
मांगन मरण समान है, मत मांगो कोई भीख, ।

मांगन से मरना भला, ये सतगुरु की सीख ।।
चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोये।
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोए।।
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।
माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर ।।
जहाँ दया तहा धर्म है, जहाँ लोभ वहां पाप।
जहाँ क्रोध तहा काल है, जहाँ क्षमा वहां आप।।
जो घट प्रेम न संचारे, जो घट जान समान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिनु प्राण।।
कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हँसे हम रोये।
ऐसी करनी कर चलो, हम हँसे जग रोये।।
कबीरा सुता क्या करे, जागी न जपे मुरारी।
एक दिन तू भी सोवेगा, लम्बे पाँव पसारी ।।
कबीरा खडा बाजार में, सबकी मांगे खैर।
ना काहूँ से दोस्ती, ना काहूँ से बैर ।।
उठा बगुला प्रेम का, तिनका चढ़ा अकास।
तिनका तिनके से मिला, तिनका तिनके पास।।
पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय ।।
साधू गाँठ न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरी खड़े जब माँगे तब देय।
साईं इतना दीजिये, जामे कुटुंब समाये।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाए।।
सुमिरन सूरत लगाई के, मुख से कछु न बोल।
बाहर का पट बंद कर, अन्दर का पट खोल।।
कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सुरमा, जाती बरन कुल खोए।।

भक्ति काव्य का सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यांकन

14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक अनवरत प्रवाहित भक्ति धारा भारत वर्ष में समय के जिस बिन्दु पर आंदोलनात्मक तेवर प्राप्त करती है, वह भारतीय समाज के लिए जड़ता, ठहराव किन्तु विस्फोट का काल रहा है। जैसा कि ग्रियर्सन की मान्यता है कि भक्ति आंदोलन बिजली की कौंध के समान अस्तित्त्व में आता है वस्तुतः ऐसा नहीं है।

उसकी जड़े सदियों पूर्व भारतीय संस्कारों, रीतियों, नीतियों एवं मूल्यों में व्याप्त हैं। वैदिक काल से लेकर 14वीं सदी तक भारतीय लोगों ने सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में न जाने कितने उतार चढाव का सामना किया एवं समय-समय पर समाज की नियामक शक्तियाँ परिवर्तित होती रही, जिनका सुनिश्चित परिणाम धर्म का आध्यात्मिक आंदोलन के रूप में प्रतिष्ठित होना था।

आचार्यों ने भक्ति काव्य को एक विराट आंदोलन में विवेचित-विश्लेषित करते हुए यह पाया है कि प्रथम बार भारतीय समाज का आधार भूमि इतनी विशुद्ध हो सकी है कि जाति सम्प्रदाय, धर्म एवं अन्य सामाजिक भेद बहुत पीछे छूट गए हैं। जैसा कि मुक्तिबोध का मानना है कि प्रथम बार शूद्रों ने अपने सन्त पैदा किए, प्रथम बार युगों-युगों से दलित शोषित जनता, अभिजात्य वर्ग के सामने सिर उठाकर खड़ी हो सकी।

यह भक्ति आंदोलन की ही देन है। वस्तुतः भक्ति जिस संदर्भ में आन्दोलनात्मक तेवर प्राप्त करती है, वह स्वभावतः सामाजिक ही हो सकता है। आचार्य शुक्ल प्रथम समीक्षक थे, जिन्होंने भक्ति काव्य का मूल्यांकन लोक धर्म और लोक जागरण की दृष्टि से किया, यद्यपि उनकी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिसके तहत वे मन्त काव्य धारा में अन्तर्निहित प्रगतिशील वस्तुतत्त्व का सटीक विश्लेषण नहीं कर सके।

किन्तु उन्होंने साहित्यिक मूल्यांकन को जनवाद की जो कसौटी प्रदान की उससे भक्ति काव्य के परवर्ती मूल्यांकन को बल मिला।

डॉ. रामविलास शर्मा भक्ति साहित्य के सामाजिक पक्ष को ही इंगित करते हुए कहते हैं-

"एक समय रहस्यवादी कवियों ने लोक जागरण में बहुत बडी भूमिका निभाई रहस्यवादी कवियों ने मनुष्य में ब्रह्म सत्ता का साक्षात्कार करके मानव धर्म का मार्ग ही प्रशस्त किया।"

अस्तु जिस काव्य को आचार्यों ने राष्ट्र की शिराओं में रक्त का संचार करने वाला कहा है निम्न वर्ग के अन्दर आत्मविश्वास जाग्रत करने वाला कहा है, लोक जागरणकारी कहा है, उसकी सामाजिक भूमिका का सांगोपांग मूल्यांकन करना आवश्यक है। विवेच्य विषय-वस्तु के संबंध में प्रथम प्रश्न तो यह उठता है कि आचार्य शुक्ल से लेकर द्विवेदी जी, रामविलास शर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, नामवर सिंह, शिव कुमार मिश्र आदि आचार्यों ने जिस भक्ति काव्य का सामाजिक मूल्यांकन करने पर बल दिया है, क्या उसकी मूल चिंता सामाजिक ही है?

वस्तुतः समूचे भक्ति काव्य की मूल चिन्ता आध्यात्मिक है, इसके बावजूद आज अगर वह हमें किसी भी कारण सर्वाधिक प्रभावित, प्रेरित, उद्वेलित करता है तो अपने उदात्त सामाजिक दृष्टि के कारण। चूंकि इस काल खण्ड के संतों और भक्तों की आध्यात्मिक चिंता आकाशीय नहीं है, बल्कि भारतीय जीवन से ही उपजी है और इसी पर प्रतिष्ठित है, इसलिए उनकी आध्यात्मिक चिंता का समीकरण सामाजिक सोच को कही भी काटता नहीं है। जहाँ कि सामाजिक चिंता. आध्यात्मिक चिंता से संग्रथित है।

बुद्ध, महावीर आदि महापुरुषों ने जिस विचार-क्रान्ति का आरम्भ किया था, उसकी भावात्मक निष्पत्ति सत काव्य धारा में ही होती है। संत काव्य धारा के पूर्व समाज की नियामक शक्तियाँ इसी विस्फोटक स्थिति की तरफ ले जा रही थीं, जहां रूढ अभिजात्य और सामंती समाज को खुली चुनौती मिल सकी।

कबीर, नानक और रैदास का ब्रह्म तमाम पारम्परिक, दार्शनिक मान्यताओं से ऊपर है और चूंकि वह घट-घट में व्याप्त है, इसलिए ब्रह्म के साधकों के लिए ईश्वर के न्याय, सत्य और ऐश्वर्य की सत्ता के अनुरूप मानवीय सत्ता की परिकल्पना सहज साध्य हो जाती है और यही कारण है कि एकला चलने का व्रत लेने वाले कबीर हिन्दू और मुस्लिम-दोनों धर्मों से तटस्थ रहने वाले कबीर सामंती समाज की विच्छित दशा को देखकर रो पड़ते हैं-

चलती चाकी देख के दिया कबीरा रोय,
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।

सन्त काव्य धारा ऐसे समाज की कल्पना करती है, जिसमें धार्मिक रूढ़ि, परम्परागत, अंधविश्वास, जातिगत, वर्णगत, सम्प्रदायगत भेद एवं नाना प्रकार के कर्मकांडों के लिए कोई जगह नहीं है। जो समाज अपने अनुभव में अपनी संवेदना में ईमानदार है, श्रमशील है, और प्रवृत्ति में निवृत्ति का साधक है वह समाज इन संतों के लिए काम्य है-

संतों वह घर सबसे न्यारा।
अरेइन दोउन राह न पाई।
पांडे बूझी पियहू तुम पानी।

संत काव्य धारा में कबीर के साहित्य में समाज के प्रति जो उदग्र (प्रगतिशील) क्रान्तिधर्मी, वैज्ञानिक विवेकवाद से समर्थित स्वच्छ, सरल एवं ईमानदार दृष्टिकोण का परिपाक पाया जाता है, वह सन्त मत के अन्य कवि दादू, रैदास, मलूक, पीपा, सेन, नानक, पल्टू, भीखा, दरिया, रज्जब साहब आदि यहाँ प्राप्त नहीं होता।

यद्यपि इन सारे संतों की दार्शनिक एवं सामाजिक मान्यताएँ लगभग एक जैसी हैं, लेकिन प्रतीत होता है कि इतिहास को सामाजिक स्थिति पर जितना आक्रोश व्यक्त करना था जितना झाड़-फटकार करना था, वह सब कबीर में मूर्त हो गया है।

लेकिन किंचित इस तथ्य की ऐतिहासिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि प्राय: निम्न वर्ग से आए हुए ये सभी सन्त दलित वर्ग के अंदर अनोखे आत्मविश्वास का संचार करते हैं और इसी दृष्टि से इनके काव्य के आध्यात्मिक आस्वाद में समाज के लिए प्रगतिशील दृष्टि का उन्मेष मिलता है, जिसकी प्रासंगिकता भक्ति काव्य की अन्य धाराओं से अपेक्षाकृत कहीं अधिक है।

निर्गुण भक्ति धारा की दूसरी शाखा, सूफी काव्य धारा का भी महत्व, उसकी सामाजिकता के कारण बढ जाता है। किंचित आचार्यों ने यहाँ तक कह डाला है कि सूफी काव्य सांस्कृतिक मेलजोल की उपज है, इस तथ्य में आंशिक सच्चाई हो सकती है।

वस्तुत: सूफी काव्य की जो लोकधर्मी जमीन है उसका सामाजिक मूल्यांकन अनिवार्यत: उसके काव्य को प्रमाणिक रूप से खोलता है। जैसा कि विजयदेव नारायण साही का कहना है कि जायसी सूफी हो न हों वे कवि अवश्य हैं। वे प्रेम के कवि हैं और धर्मनिरपेक्ष मानसिकता के कवि हैं।

आचार्य शिव कुमार मिश्र, राम स्वरूप चतुर्वेदी ने जायसी की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि को सराहा है। वस्तुत: सच्ची रचनाशीलता का साक्ष्य कथ्य की लोकधर्मी जमीन से मिल जाता है। जिस सामन्ती संस्कृति में नारी विजय की वस्तु थी और उसे पाने के लिए बड़े-बड़े युद्ध हुआ करते थे उसे जायसी खुदा का दर्जा देते

है और उसे पाने के लिए रत्नसेन राजसी वैभव त्यागकर जोगिया बाना धारण कर लेता है।

जायसी अपनी कथा के इर्द गिर्द समूचे भारतीय समाज की रीति, नीति, परम्परा नैतिक मूल्य, उत्सव आदि को इस तरह ढूँढते हैं कि कथ्य के माध्यम से ही सम्प्रेषित होने वाला लोक-समारोह बड़ी सहजता के साथ यह ज्ञापित करने लगता है कि यहाँ की प्रकृति, जमीन।

नदी, नाले, पशु-पक्षी, वन उपवन से कवि का कितना गहरा नाता है। इसे जायसी का लोक प्रेम और राष्ट्रप्रेम दोनों कहा जा सकता है। सन्त काव्य में मानव प्रेम, मानव-धर्म की सत्ता को सर्वोपरि माना गया है। ठीक यही बात सूफी काव्य में देखने को मिलती है।

इसका सबसे बड़ा रचनात्मक सामाजिक उपक्रम यह है कि सामंती संस्कृति का अतिक्रमण करके कवि सहज नैसर्गिक जीवनोत्सव की प्रतिष्ठा करता है, जिसकी जमीन प्रेम की जमीन होती है और जिसकी दृष्टि सत्य न्याय और स्वाभिमान की और होती है।

यद्यपि कुछ प्रगतिशील समीक्षकों का मानना है कि संत काव्य धारा जिस प्रगतिशील अन्तर्वस्तु को लेकर चल रही थी. उसे अभिजात्य वर्ग बीच में ही खंडित कर देता है। इस तथाकथित वर्ग ने ही सगुण काव्य के द्वारा निर्गुण के किए-कराए पर पानी फेर दिया।

लेकिन अन्य आचार्य यथा डॉ. प्रेम शंकर डॉ. मैनेजर पाण्डेय आदि का मानना है कि इस तथ्य में आंशिक सत्य ही है। डॉ. प्रेम शंकर सूर काव्य में चारागाही संस्कृति के आलोक में उसकी सामाजिकता की गहरी जाँच पड़ताल करते हैं और डॉ. मैनेजर पाण्डेय भी स्वच्छन्दता के शिखर कृष्ण के क्रान्तिधर्मी चरित्र की व्याख्या करते हैं।

वह चरित्र जो कि अपने समय के सामंती और अभिजात्यवाद को घोषित चुनौती देता है। जिस काल खण्ड में मातृत्व गर्हित हो चला था नारियाँ हरमों की वस्तु बन चुकी थीं और विलासिता के कारण राजाओं का ध्यान प्रजा की तरफ एकदम नहीं जाता था, उस काल खण्ड में सूरदास अपनी ईमानदार एवं चरम संवेदनशील रचनाशीलता का साक्ष्य देते हुए यशोदा जैसी मां की प्रतिष्ठा करते है और बल्लभाचार्य-निर्दिष्ट म्लेच्छाक्रांत धरती पर मातृत्वरूपी दूध की गंगा ही बहा देते हैं।

शिशु को ब्रह्म के रूप में चित्रित करके वह मानवीय संवेदना के कोमलतम तंतु पर उंगली रखते हैं। राजसी विलासिता के समक्ष यह गृहस्थ जीवन की प्रतिष्ठा है। सूर का काव्य, नारी की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठा करके उस समय के समाज को सबसे बड़ा उपहार देता है। भ्रमर गीत प्रसंग पर आचार्य शुक्ल जैसे मर्यादावादी समीक्षक भी रीझ जाते हैं।

प्रथम बार प्रेम सामती-चौखटों से बाहर निकलकर प्रकृति के खुले प्रांगण में आता है और नारियां सामंती चौहड़ियो से बाहर अपने व्यक्तिगत स्वातन्त्र की घोषणा करती हैं। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी, कृष्ण काव्य धारा की सामाजिकता को लक्षित करते हुए उसे गृहस्थ धर्म का काव्य कहते हैं। उनके अनुसार सूर सागर में गृहस्थों का उत्सव है। उस समय के टूटते हुए समाज के लिए यह बहुत बड़ा सम्बल था।

कालान्तर में मीरा तो सूर की गोपियों की व्यावहारिक व्याख्या ही बनकर आती हैं। कृष्ण काव्य धारा में निहित सामाजिक दृष्टि का प्रगतिशील रूप किसी भी दृष्टि से कम महत्व का नहीं है, जबकि यहाँ आकर वैदिक विधि निषेध खण्ड-खण्ड टूट गए हैं, लेकिन यह आश्चर्यजनक तथ्य है और आकस्मिक नहीं है कि समाज यहाँ ज्यादा सशक्त ज्यादा उन्नत और उसी अनुपात में ज्यादा संगठित दिखाई पड़ता है।

आचार्य शुक्ल भक्ति काव्य की समीक्षा करने हुए उसके लोक धर्म का चरम रूप तुलसीदास के रामचरित मानस में पाते हैं। रामभक्ति धारा में तुलसी की रचनाशीलता उस शिखर को छू लेती है, जिसके बाद राम का आख्यान प्रायः निःशेष हो गया है।

तुलसी अपने समय की सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट होते हुए रामराज्य की परिकल्पना करते हैं, टूटते हुए समाज को बांधने के लिए वह राम जैसा अनुशासनबद्ध, मर्यादित और शाखाशील तथा सौदंर्य का शिखर चरित्र चिन्हित करते हैं। समूचे भक्ति साहित्य में जिस प्रकार तुलसी की दृष्टि सर्वाधिक समन्वयात्मक है, उसी प्रकार उनकी सामाजिक दृष्टि भी सर्वाधिक नीतिबद्ध एवं संगठित है, जिसका परिणाम 'मानस' जैसे अद्वितीय प्रबन्ध की सर्जना है।

प्रगतिशील समीक्षकों का मानना है कि चूंकि तुलसीदास सनातन धर्मी मानसिकता में संशोधन के ही पक्ष में है, निर्गुणियो की तरह वे पूर्ण सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर नहीं है, इसलिए आज के संदर्भ में आनुपातिक तौर पर उनका

काव्य कम प्रगतिशील है। किन्तु रामकाव्य धारा के सामाजिक प्रदेय का मूल्यांकन किसी एक कसौटी पर नहीं किया जा सकता है।

जो भक्ति काव्य ग्रंथ उत्तर भारत के लोगों का कण्ठाहार बन जाता है, निश्चित ही उसमें लोक मनोविज्ञान का गहरा रचाव रहता है। लोक मनोविज्ञान का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करने वाला मानस सामाजिक जमीन पर जन से सीधे जुड़ा हुआ है। परिवार से लेकर समाज और राष्ट्र तक की सुसंगठित संरचना की परिकल्पना केवल तुलसी के समय में या आज के समय में ही नहीं, बल्कि हर युग के लिए महत्वपूर्ण है

हिन्दी आलोचना में भक्ति काव्य का मूल्यांकन

भक्ति-काव्य हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य निधि है। यह हिन्दी आलोचना का भी सर्वाधिक चिन्तनशील विषय-क्षेत्र रहा है। इसकी व्यापक और सुदीर्घ लोकप्रियता ने हिन्दी आलोचकों को अपनी ओर आकर्षित किया है। आलोचकों को यह अपने भीतर मौजूद कालजयी मूल्यों और साहित्यिक तत्त्वों के अन्वेषण के लिए आमन्त्रण और चुनौती देता रहा है। हिन्दी के प्रमुख आलोचकों ने उसके स्वरूप की पड़ताल के दौरान आलोचना के प्रतिमान भी विकसित किए हैं। ऐसे में यह जानना जरूरी है कि हिन्दी आलोचना में भक्ति-काव्य का मूल्यांकन किस रूप में किया गया है? विभिन्न आलोचकों के भक्ति काव्य के मूल्यांकन का आधार क्या है? भक्ति काव्य सम्बन्धी क्या निष्कर्ष सामने आए हैं? और इसने भक्ति काव्य को समझने के तरीके को कैसे प्रभावित किया है? इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर 'हिन्दी आलोचना में भक्ति-काव्य का मूल्यांकन' को हम पढ़-समझ सकते हैं।

आरम्भिक हिन्दी आलोचना में भक्ति-काव्य का स्वरूप

हिन्दी आलोचना में भक्ति-काव्य का स्वरूप समझने और उसका मूल्यांकन करने का इतिहास हिन्दी आलोचना जितना ही पुराना है। आरम्भिक प्रयासों के रूप में मध्ययुगीन भक्तों, कवियों, टीकाकारों की उक्तियां उल्लेखनीय हैं। यद्यपि ये आलोचना के वर्तमान स्वरूप के अनुरूप नहीं हैं, लेकिन भक्ति के कई आलोचकों ने इन्हें अपनी आलोचना में महत्त्वपूर्ण माना है। इसके अलावा ग्रियर्सन जैसे इतिहासकारों के लेख भी महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। हिन्दी आलोचना में भक्तिकाल का विवेचन भक्तिकाल से ही प्रारम्भ हो गया था। इन ग्रन्थों में

भक्तमाल, चौरासी वैष्णवन की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता प्रमुख हैं। इनमें भक्ति विवरण के साथ उनका सारगर्भित मूल्यांकन भी मिलता है। भक्तमाल में नाभादास ने कबीर, सूर आदि के गुण-दोष का विश्लेषण किया है। इन भक्त रचनाकारों के जीवन और काव्य की यहाँ आलोचनात्मक एवं विवेकपूर्ण समीक्षा है। कबीर के बारे में उनका यह छप्पय प्रसिद्ध है–

भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम कर गायौ।
जोग, जग्य, व्रत, दान, भजन, बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू तुरक प्रमान, रमैनी, शबदी, साखी।
पक्षपात नहीं बचन, सबही के हित की भाखी॥
आरूढ़ दसा हे जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी॥

अर्थात कबीर ने भक्ति से विमुख धर्म को अधर्म कहा। भजन के बिना योग, यज्ञ, व्रत और दान को तुच्छ बताया। हिन्दू और तुर्क में भेद करने के बजाय पक्षपात रहित रहने को कहा और सबका हित करने वाली साखी, सबद, रमैनी के रूप में अपना बचन सुनाया। किसी की मुँह देखी नहीं, कही, चाहे वह कितना भी बड़ा हो। वर्णाश्रम और षड्दर्शन की मर्यादा नहीं रखी। अर्थात नाभादास को कबीर की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ चिह्नित करने में पर्याप्त सफलता मिली है। भक्तमाल में अष्टछाप के प्रमुख कवियों सूरदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास आदि का भी वर्णन किया गया है। इस तरह साहित्य में भी भक्तिकाल के कवियों के जीवन संस्मरण और विश्लेषण मिलता है। हालांकि इन रचनाओं में कई अतिशयोक्तियाँ और दन्त कथाएँ भी मिलती है। इनको हटा दें, तो यह तो कहा ही जा सकता है कि इन ग्रन्थों से उस काल में इन कवियों के होने के प्रमाण तो मिलते ही हैं। यह इन ग्रन्थों के अलावा उस समय की लोक कथाओं और मौखिक जनश्रुतियों में भी इस काल के रचनाकारों के बारे में हमें जानकारी मिलती है।

सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में भक्ति-काव्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। सबसे पहले ग्रियर्सन ने भक्ति-काव्य के व्यापक और गहरे प्रभाव को अपने इतिहास-ग्रन्थ में रेखांकित किया। वे लिखते हैं कि "हम अपने को एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं, जो उन सब आन्दोलनों से कहीं अधिक विशाल है जिन्हें भारतवर्ष ने कभी

देखा है, यहाँ तक कि बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल है, क्योंकि उसका प्रभाव आज भी वर्तमान है। उस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।"(आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1987 ई., पृ. 52) उन्होंने भक्ति आन्दोलन की तुलना यूरोप के रिनेसाँ से की है। इसके अलावा ग्रियर्सन ने तुलसी-काव्य का मूल्यांकन एक आलोचनात्मक निबन्ध में किया है। रामचरितमानस की व्यापक लोकप्रियता के बारे में उन्होंने लिखा है कि "राजमहल से झोपड़ी तक, यह ग्रन्थ प्रत्येक हाथ में है और हिन्दू समाज के छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, बालक-वृद्ध चाहे जो हों, प्रत्येक वर्ग द्वारा समान रूप से पढ़ा-सुना और समझा जाता है।" (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1987 ई., पृ. 52) उन्होंने धार्मिक-सांस्कृतिक दृष्टि के साथ-साथ साहित्यिक दृष्टि से भी मानस का महत्त्व रेखांकित किया है। तुलसी के चरित्र-निर्माण की विशेषता बताते हुए उन्होंने लिखा है कि "तुलसी के खलपात्र भी केवल कालिमा से पुती तस्वीरें नहीं हैं। प्रत्येक की अपनी चरित्रगत विशिष्टता है और इनमें से कोई ऐसा नहीं है, जिसमें दोष की कमी को पूरा करने वाला कोई गुण न हो।"(जार्ज ग्रियर्सन, दि मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, अनुवाद-किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी साहित्य का नया इतिहास, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1961, पृ. 141)

इनके पश्चात मिश्र बन्धुओं ने अपने 'हिन्दी नवरत्न' में तीन भक्त कवियों कबीर, सूर और तुलसी को शामिल कर भक्ति-काव्य का महत्त्व बताया। हिन्दी नवरत्न के अलावा मिश्रबन्धुओं ने मिश्रबन्धु विनोद में भक्तिकाल के कवियों का समग्र परिचय दिया है। हालांकि उन्होंने इन कवियों का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन नहीं किया। उनका सारा विवेचन प्रशंसात्मक है। वे कविता के महत्त्व के कारणों का परिचय देने के बजाय उस पर दाद देते हुए प्रतीत होते हैं। (विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित 1995, पृ. 32-33)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल की श्रेष्ठता को स्थापित किया। इनके पश्चात आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने भक्तिकाल की गहरी छानबीन की। इससे भक्तिकाल के मूल्यांकन को नई दिशा प्राप्त हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति-काव्य के मूल्यांकन में उसकी साहित्यिक विशेषताओं तथा महत्त्व को उजागर करने के साथ, उसके कारण, स्वरूप, राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक स्थितियों पर भी प्रकाश डाला है। सन् 1929 में उनका हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रकाशित हुआ। इसमें उनकी भक्ति-काव्य सम्बन्धी स्थापनाएँ सार रूप में संग्रहीत हैं। इसके अलावा गोस्वामी तुलसीदास ग्रन्थ में उन्होंने भक्तिकाव्य में तुलसी को सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में स्थापित किया है। इसके अलावा शुक्ल जी ने जायसी ग्रन्थावली का सम्पादन किया तथा उसकी एक लम्बी भूमिका लिखी। उन्होंने सूरदास की भ्रमरगीतसार पुस्तक का संकलन-सम्पादन किया तथा इसकी एक सारगर्भित भूमिका लिखी। इनसे इन दोनों महाकवियों का महत्त्व स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त चिन्तामणि के निबन्धों में प्रसंगवश भक्ति-काव्य के अनेक पक्ष उजागर हुए हैं। हिन्दी साहित्य का इतिहास में भक्ति-काव्य के उदय का कारण बताते हुए शुक्ल जी ने पहली बार भक्ति-काव्य का उसके समय और समाज से सम्बन्ध दिखाया है। भक्ति-काव्य के उदय के राजनीतिक कारण के रूप में इस्लाम के आगमन से पराजित हिन्दू जाति की पराजय और निराशा से मुक्ति की आकांक्षा के रूप में देखा है। उन्होंने लिखा कि "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मन्दिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, कलाविभाग, पृ. 39) उन्होंने दिखाया कि राजनीतिक के साथ ही धार्मिक स्थिति भी भक्ति काव्य के उदय की जमीन तैयार कर चुकी थी। इन्हीं स्थितियों में दक्षिण से आई भक्ति को उत्तर भारत में पूरा फैलने का अवकाश मिला।

भक्ति-काव्य के सम्यक् अध्ययन और मूल्यांकन को शुक्ल जी ने वर्गीकरण के जरिए सहज बोधगम्य बना दिया। उन्होंने सर्वप्रथम भक्ति-काव्य को दो हिस्सों निर्गुण और सगुण में बाँटा। पुनः निर्गुण के दो हिस्से किए ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। इसी तरह सगुण के दो हिस्से किए राम-भक्ति शाखा और

कृष्ण-भक्ति शाखा। इस तरह भक्ति-काव्य सहज बोध के लिए उपयुक्त बन गया।

शुक्ल जी ने भक्ति-काव्य में राम-काव्य को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है। उन्होंने भक्ति के तीन अंग–कर्म, धर्म और ज्ञान माने हैं। राम-काव्य इसीलिए सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि उसमें तीनों अंगों का पूर्ण विकास मिलता है। इस प्रतिमान पर उन्हें निर्गुण काव्य सीमित महत्त्व का लगा। उन्होंने निर्गुण काव्य को कर्म से दूर कर देने वाला माना। उन्हें सन्त काव्य केवल कोरे ज्ञान पर और सूफी काव्य केवल प्रेम पर बल देता प्रतीत हुआ। सन्त काव्य में मौजूद प्रेम-तत्त्व को उन्होंने सूफी प्रभाव से आया हुआ माना। उन्होंने लिखा कि "कबीर तथा अन्य निर्गुणपन्थी सन्तों के द्वारा अन्तस्साधना में रागात्मिका 'भक्ति' और 'ज्ञान' का योग तो हुआ, पर 'कर्म' की दशा वही रही जो नाथपन्थियों के यहाँ थी। इन सन्तों के ईश्वर ज्ञानस्वरूप और प्रेमस्वरूप ही रहे, धर्मस्वरूप न हो पाए।" इस राय के बावजूद आचार्य शुक्ल कबीर-काव्य को निम्नवर्गीय जनता को, भक्ति शुष्कता और आत्मदीनता के भाव से उबारने के कारण महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने लिखा कि "इसमें कोई सन्देह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को सम्भाला जो नाथपन्थियों के प्रभाव से प्रेम-भाव और भक्ति-रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।"

निर्गुण काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा की ही तरह प्रेममार्गी शाखा भी साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। शुक्ल जी ने उसे प्रेम-सूत्र के द्वारा हिन्दू-मुसलमान के बीच अपरिचय और अलगाव को मिटाने वाले रूप में देखा। वे उसकी सामासिक संस्कृति के निर्माण में निभाई गई भूमिका को रेखांकित करते हुए लिखते हैं "कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए, उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य-मात्रा के हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।"(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, कलाविभाग, पृ. 66-67) जायसी को तुलसी और सूर के समकक्ष स्थान देना उनके सूफी काव्य के महत्त्व को पहचानने का

प्रमाण है। शुक्ल जी से पहले मिश्रबन्धुओं ने नवरत्न में जायसी को शामिल नहीं किया था। वे बड़े कवि के रूप में सबसे पहले शुक्ल जी के द्वारा ही पहचाने गए।

शुक्ल जी सगुण काव्य को निर्गुण की तुलना में जनता का ज्यादा हित करने वाला मानते हैं। कृष्ण काव्य ने भक्ति के निराले आनन्द-लोक की सृष्टि की। उस लोक में सांसारिक विधि निषेध, दु:ख-कष्ट, जरा-व्याधि नहीं है। वह सिद्धावस्था का काव्य है। वह यौवन और सौन्दर्य का वासनामुक्त आनन्द-लोक रचने के कारण श्रेष्ठ है। सूरदास इसके प्रतिनिधि रचनाकार हैं। वे तुलसी जैसे सर्वांगपूर्ण काव्य के रचयिता तो नहीं, मगर अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं। आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "यद्यपि तुलसी के समान सूर का काव्य-क्षेत्र इतना व्यापक नहीं कि उसमें जीवन की भिन्न-भिन्न दशा का समावेश हो, पर जिस परिमित पुण्य-भूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया, उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची, वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। बाल-चेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भण्डार और कहीं नहीं।" आचार्य शुक्ल जी तुलसी को सर्वश्रेष्ठ मानने पर भी सूरदास को नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा में सबसे बढ़कर बताते हैं।

राम-काव्य को उन्होंने सर्वांगपूर्ण कहा है। वह कर्म, धर्म और ज्ञान–तीनों को साथ लेकर चलने वाला है। उसमें विराट् समन्वय और लोकमंगल की भावना अन्तर्निहित है। तुलसी का काव्य उसका चरम उत्कर्ष है। शुक्ल जी ने विषय और शिल्प दोनों स्तरों पर तुलसी-काव्य की सर्वांगपूर्णता दिखाई है। तुलसी की कथ्यगत सम्पूर्णता का उल्लेख कर उनकी सर्वश्रेष्ठता घोषित करते हुए शुक्ल जी लिखते हैं कि "भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं, तो इन्हीं महानुभाव को और कवि जीवन का कोई एक पक्ष लेकर चले हैं। जैसे वीर-काल के कवि उत्साह कोय भक्ति-काल के दूसरे कवि प्रेम और ज्ञान को अलंकार-काल के कवि दाम्पत्य प्रणय या शृंगार को। पर इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है।"

आचार्य शुक्ल के अनुसार रचना शैली की दृष्टि से भी तुलसी सर्वश्रेष्ठ हैं। उन्होंने मध्यकाल के हिन्दी प्रदेश की सभी काव्य-भाषाओं में और सभी शैलियों में श्रेष्ठ रचनाएँ की हैं। वे लिखते हैं कि "काव्य-भाषा के दो रूप और रचना की पाँच मुख्य शैलियाँ साहित्य क्षेत्र में गोस्वामी जी को मिलीं। तुलसीदास जी के रचना-विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोन्मुखी

प्रतिभा के बल से सबके सौन्दर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य-वाणी में दिखाकर साहित्य क्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए।"

भक्ति-काव्य का मूल्यांकन करने के लिए आचार्य शुक्ल ने अपने नए प्रतिमान विकसित किए थे। ये प्रतिमान रामचरितमानस सहित तुलसी-काव्य से ही निर्मित हुए थे। इस केन्द्रीय दृष्टि के कारण उन्हें अनेक सफलताएँ मिलीं, लेकिन निर्गुण काव्य के मूल्यांकन में थोड़ी चूक हो गई, जिसे बाद के आलोचकों ने दुरुस्त किया।

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

सन् 1933 में डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल की पुस्तक हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा प्रकाशित हुई। यह मूलतः उनका शोध-ग्रन्थ है। इसने सर्वप्रथम निर्गुण भक्ति-काव्य सम्बन्धी शुक्ल जी की स्थापनाओं का खण्डन किया और उसका महत्त्व स्थापित किया गया है। शुक्ल जी ने लिखा था कि निर्गुण सन्त जनता को कर्म-क्षेत्र से हटाने में लगे थे। बड़थ्वाल ने सन्तों को कृषि और व्यवसाय से जुड़ा हुआ बताया। उन्होंने निर्गुण काव्य को समाज को दुरुस्त करने वाले काव्य के रूप में देखा, न कि तोड़ने वाले काव्य के रूप में। 'सन्त' शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा कि "समाज कीशृंखला को सन्त तोड़ना नहीं चाहता। समाज में प्रचलित अन्यायों और बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाने में वह बेशक नहीं हिचकता। विशेषकर ऐसे अवसर पर जब युग की आवश्यकताओं को देखते हुए सामाजिक नियम अधूरे और निकम्मे पड़ जाते हैं, उस समय वह समाज के नियमों को आवश्यकता के अनुकूल ढालने में सहायता करता है। किन्तु वह समाज को विशृंखल करना बिल्कुल नहीं चाहता।"

बड़थ्वाल ने सगुण और निर्गुण को बिल्कुल अलग रखकर देखने को गलत बताया। निर्गुण काव्य को श्रम के सौन्दर्य से पूर्ण और समाज की जाति और धर्म सम्बन्धी भेद को मिटाने वाले काव्य के रूप में देखना उनके मूल्यांकन की खासियत है। इसी तरह आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने सन्त काव्य और विशेषतः कबीर और दादू की रचनाओं का महत्त्व स्थापित किया।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

भक्ति-काव्य की निर्गुण शाखा का महत्त्व प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को ही जाता है। उन्होंने कबीर की रचनाओं को अपने

आलोचनात्मक प्रतिमानों का आधार बनाया। उनकी तीन पुस्तकें मध्यकालीन धर्म साधना, कबीर और हिन्दी साहित्य की भूमिका भक्ति-काव्य सम्बन्धी उनके मूल्यांकन को समझने के लिए बहुत उपयोगी हैं। इनका सार उन्होंने अपने छात्रोपयोगी इतिहास पुस्तक हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास में संगृहीत कर दिया है। भारत की धर्म और काव्य-परम्परा का गहन अन्वेषण कर उन्होंने साबित किया कि कबीर किसी विदेशी धर्म दर्शन को अपनाकर नहीं चले थे, बल्कि उनकी काव्य-परम्परा का मूल भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में है। उन्होंने दिखाया कि निर्गुण काव्य परम्परा सगुण की तुलना में अधिक प्राचीन और व्यापक भारतीय परम्परा है। परम्परा को गहराई से देख पाने के कारण ही उन्होंने भक्ति-काव्य को इस्लाम के आगमन की प्रतिक्रिया में पराजित हिन्दू जाति की देन माने जाने का प्रतिवाद किया। उसका महत्त्व घोषित करते हुए उन्होंने लिखा कि "मैं इस्लाम के महत्त्व को भूल नहीं रहा हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"(आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1987 ई, पृ. 15-16) आचार्य द्विवेदी ने भक्ति-काव्य को शास्त्र निर्देश के बजाय लोकचिन्ता के कोण से देखने का मार्ग चुना। उन्होंने लिखा है कि "मतों, आचार्यो, सम्प्रदायों और दार्शनिक चिन्ताओं के मानदण्ड से लोक-चिन्ता को नहीं मापना चाहता, बल्कि लोक-चिन्ता के सापेक्ष में उन्हें देखने की सिफारिश कर रहा हूँ।" भक्ति-काव्य के सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों से सम्बन्ध की पड़ताल करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि सन्त-काव्य सामाजिक स्थितियों के कारण आमजनों में पैदा हुए असन्तोष को स्वर देने वाला काव्य है। मध्यकालीन धर्म साधना में वे लिखते हैं–"मध्यकाल का सन्त-साहित्य प्रधान रूप से धार्मिक साहित्य है, परन्तु उसका धार्मिक रूप साधारण जनता के लिए लिखा गया है। इस विषय में तो किसी को मतभेद नहीं होगा कि इस साहित्य में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की आलोचना की गई है। दीर्घकाल से प्रचलित धार्मिक विश्वासों, सामाजिक और वैयक्तिक आचरणों के मान तथा विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा स्वीकार सिद्धान्तों पर या तो आक्रमण किया गया या उसके सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया गया है। यह उन विभिन्न सन्तों के तीव्र असन्तोष का फल था जो उन्हें सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनुभूत हो रहा था।"(आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, सन् 1961, पृ. 84) निर्गुण साहित्य के साथ ही सगुण साहित्य को भी आचार्य द्विवेदी ने परम्परा से

जोड़कर देखा। सगुण-निर्गुण में से एक की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के बजाय उन्होंने दोनों की विशेषताओं का सहृदयतापूर्वक उद्घाटन किया। उन्होंने दोनों के समान सूत्रों की तलाश की और उसके समान सार के रूप में प्रेम, भक्ति और लोकमंगल-कामना की पहचान की है। आचार्य द्विवेदी लिखते हैं "इस सम्पूर्ण साहित्य के मूल में यह है कि भक्त का भगवान के साथ एक व्यक्तिगत सम्बन्ध है। भगवान या ईश्वर इन भक्तों की दृष्टि में कोई शक्ति या सत्तामात्रा नहीं है, बल्कि एक सर्वशक्तिमान व्यक्ति है, जो कृपा कर सकता है, प्रेम कर सकता है, उद्धार कर सकता है, अवतार ले सकता है। निर्गुण मत के भक्त हों या सगुण मत के, भगवान के साथ उन्होंने कोई-न-कोई अपना सम्बन्ध पाया है।"(आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन-नई दिल्ली, सन् 1987, पृ. 85) लौकिक सम्बन्ध द्वारा अलौकिक प्रेम की चाह भक्ति-काव्य की बहुत बड़ी विशेषता है। यह भक्त को भगवान के समकक्ष बना देती है।

आचार्य द्विवेदी भक्ति-काव्य को अपने दौर की असुन्दर स्थितियों से मुक्ति की आकांक्षा के रूप में देखते हैं। साथ ही वे उसकी सीमाओं की ओर भी संकेत करते हैं। भक्ति-काव्य की मुक्ति की आकांक्षा को आधुनिक आकांक्षा से अलग करते हुए उन्होंने लिखा है कि "जिस प्रकार एक आधुनिक रचनाकार अपने इर्द-गिर्द की परिस्थिति में कुछ असुन्दर देखता है तो उसे सुन्दर शोभन में परिवर्तित करने के लिए व्याकुल हो उठता है। भक्ति-साहित्य में भी इस प्रकार की व्याकुलता प्रचुर मात्रा में है, पर वह आधुनिक इसलिए नहीं है, क्योंकि उसका आदर्श परलोक में मनुष्य को मुक्त करना है।" (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, सन् 1970, पृ. 18-19) आचार्य द्विवेदी का भक्ति-काव्य का मूल्यांकन उसके कलात्मक और साहित्यिक मूल्यों का भी उद्घाटन करता है। वह भक्ति-काव्य को हिन्दी साहित्य में अधिक लोकतान्त्रिक, बहुसंस्कृतिवादी और मानवीय मूल्यों को अनुप्राणित करने वाली निधि के रूप में स्थापित करता है।

स्वातन्त्र्योत्तर आलोचना में भक्ति-काव्य

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी आलोचना परम्परा प्राप्त स्थापनाओं को लेकर आगे बढ़ी। इस दौर में भक्ति-काव्य के मूल्यांकन की नई दृष्टि मुख्यतः प्रगतिशील आलोचकों की रचनाओं से मिलती है। मुक्तिबोध भक्ति-काव्य का मूल्यांकन

वर्गीय चेतना के आधार पर करने वाले पहले आलोचक हैं। उन्होंने भक्ति-काव्य के मूल्यांकन के लिए उसे उस दौर की गतिशील सामाजिक-सांस्कृतिक शक्तियों से बनने वाले इतिहास के बीच रखकर देखने का प्रस्ताव किया है। वे सामाजिक संघर्ष को केन्द्र में रखकर कुछ नए निष्कर्ष तक पहुँचे हैं। उन्होंने निर्गुण सन्तों की वाणियों को सर्वाधिक आधुनिक और प्रगतिशील बताया है। वे भक्ति-आन्दोलन के पतन का कारण सगुण मत द्वारा निर्गुण की पराजय के रूप में देखते हैं। यह उन्हें उच्च वर्गीय ब्राह्मण केन्द्रित व्यवस्था द्वारा निम्नवर्गीय क्रान्तिकारी चेतना की पराजय लगी है। वे तुलसी की साहित्यिक प्रतिभा के भी कायल हैं, किन्तु उनकी विचारधारा को प्रतिगामी मानते हैं। उनके निबन्ध से भक्ति-काव्य के सामाजिक दाय को समझने की एक नई दृष्टि मिलती है।

रामविलास शर्मा ने भक्ति-काव्य को सामाजिक-सांस्कृतिक और मानवीय दृष्टि से ही नहीं जातीय और राष्ट्रीय दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण बताया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, हिन्दी जाति का साहित्य और भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश भक्ति काव्य के मूल्यांकन की दृष्टि से उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। आखिरी पुस्तक भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश के पहले खण्ड में भक्ति की परम्परा रेखांकित की गई है। दूसरे खण्ड में भक्ति-आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। भक्ति को वे भागवत और आलवारों से पीछे ऋग्वेद तक ले जाते हैं। इस तरह वे पाश्चात्य विद्वानों के इसाईयत के प्रभाव से भक्ति के उत्पन्न होने को गलत ठहराने के लिए एक और तर्क देते हैं। वे भक्ति को सगुण, निर्गुण को जोड़ने वाले सूत्र के रूप में देखते हैं। उन्होंने कबीर की जातिगत असमानता विरोधी चेतना को योगियों के प्रभाव से अलग, भक्ति के कारण उत्पन्न माना है। यह भक्ति तुलसीदास सहित सभी भक्त कवियों को जाति-पाँति विरोधी बना देती है। उन्होंने भक्ति-काव्य को सांस्कृतिक-सामाजिक के अलावा अखिल भारतीय एवं वैश्वकि साहित्य के सन्दर्भ में रखकर देखा है। उन्होंने भक्ति काव्य को भारत के जातीय साहित्य के रूप में स्थापित करते हुए लिखा कि "काव्य और संगीत के इस समन्वय से इन कवियों ने एक ओर समाज-सुधार के आन्दोलन को व्यापक रूप दिया, तो दूसरी ओर हिन्दी प्रदेश के जनपदों का अलगाव दूर करते हुए जातीय एकता स्थापित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।" (रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, प्रथम खण्ड, किताब घर, दिल्ली, संस्करण 1999, पृ. 188)

उनके यहाँ भक्ति-काव्य ऐसा काव्य हो गया है, जिसमें भारत की एकता और अखण्डता के अविनश्वर स्त्रोत हैं।

भक्ति-काव्य के मूल्यांकन की दृष्टि से नामवर सिंह की दूसरी परम्परा की खोज पुस्तक भी उल्लेखनीय है। इसमें कबीर के लोक-धर्म और अस्वीकार के साहस के सहारे दूसरी परम्परा की परिकल्पना की गई है। इसके अतिरिक्त कबीर, सूर, जायसी, मीरा, तुलसी आदि के भक्ति-काव्य पर लिखी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, जो भक्ति-काव्य के मूल्यांकन में अपने तरीके से कुछ जोड़ती हैं। भक्ति-काव्य का मूल्यांकन करने वालों में विजयदेव नारायण साही, परशुराम चतुर्वेदी, देवीशंकर अवस्थी, विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ. धर्मवीर, डॉ. उदयभानु सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष

इस तरह हम कह सकते हैं कि हिन्दी आलोचना में भक्ति-काव्य का मूल्यांकन अनेक दृष्टियों से किया गया है। उसे उसके दौर के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों के साथ रखकर समझा गया है। आर्थिक परिवेश, वर्ग संरचना, जाति व्यवस्था, धार्मिक स्थिति आदि के साथ ही उसे भारत की बहुसांस्कृतिक बहु भाषिक एवं अखिल भारतीय साहित्यिक परम्परा से जोड़कर भी समझा गया है। हिन्दी आलोचना भक्ति-काव्य का साहित्यिक ही नहीं सामाजिक, सांस्कृतिक, जातीय, राष्ट्रीय और सार्वभौमिक महत्त्व को उजागर करने में सफल रही है। भक्तिकाल के दो प्रमुख रूप है। एक धर्म और भक्ति का रूप है और दूसरा साहित्य, संस्कृति और कला का रूप है। दोनों रूपों में भक्तिकाल श्रेष्ठ है। इसलिए कुछ आलोचक भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य के 'स्वर्णयुग' के रूप में याद करते हैं।

5

रीतिकालीन वीर काव्य के कवि और उनकी रचनाएँ

रीतिकाल में वीर काव्य धारा के दर्शन भी होते हैं। वीर रस की फुटकर रचनाएँ निरंतर रची जाती रही। जिनमें युद्धवीरता और दानवीरता दोनों की बड़ी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी। भूषण इस काव्य-प्रवृत्ति के प्रमुख कवि हैं। भूषण का काव्य युग की प्ररेणा की उपज कहा जा सकता है। अपने युग के जिस आदर्श नायक शिवाजी का भूषण ने अपने काव्य में चित्रण किया है, वह उनकी अपनी मनोभावनाओं का साकार रूप है, किसी सामंत की प्रतिमूर्ति नहीं। भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल को काव्य-नायक बनाकर उनके वीर कृत्यों का ओजस्वी भाषा में चित्रण किया है। भूषण के अतिरिक्त लाल, सूदन, पद्माकर, सेनापति, चंद्रशेखर, जोधराज, भान और सदानंद आदि कवियों ने भी वीर-काव्य की रचनाएँ की हैं।

भूषण (1613-1705) रीतिकाल के तीन प्रमुख कवियों में से एक हैं, अन्य दो कवि हैं बिहारी तथा केशव। रीति काल में जब सब कवि शृंगार रस में रचना कर रहे थे, वीर रस में प्रमुखता से रचना कर भूषण ने अपने को सबसे अलग साबित किया। 'भूषण' की उपाधि उन्हें चित्रकूट के राजा रूद्रसाह के पुत्र हृदयराम ने प्रदान की थी। ये मोरंग, कुमायूँ, श्रीनगर, जयपुर, जोधपुर, रीवाँ,

शिवाजी और छत्रसाल आदि के आश्रय में रहे, परन्तु इनके पसंदीदा नरेश शिवाजी और बुंदेला थे। कवि भूषण का परिवार आज कानपुर नगर के सजेती कस्बा में रहता है। कवि भूषण तिवारी खानदान के थे जिनके वंशज शिवमोहन तिवारी आज सजेती कस्बा में रहते हैं।

जीवन परिचय

कवि वर भूषण तिवारी ब्राह्मण परिवार से थे उनके जन्म, मृत्यु, परिवार आदि के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परंतु सजेती कस्बा में कवि भूषण जी का एक परिवार रहता है, जो इस बात का दावा करता है कि वो ही कवि भूषण के वंशज है व् टिकवापुर गाँव छोड़ कर अग्रेजो के जमाने में उनके पूर्वज यहाँ बस गए। आज भी उनकी जमीने टिकवापुर गाँव में पड़ती है कवि भूषण की बाद की पीढ़ी का सति माता का एक मंदिर टिकवापुर में बना है जिसे यह परिवार अपनी कुलदेवी मानता है व् हर छोटे मोटे त्यौहार में उनकी पूजा अर्चना करता है। भूषण का जन्म संवत 1670 तदनुसार ईस्वी 1613 में हुआ। उनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था।

भूषण का वास्तविक नाम घनश्याम था। शिवराज भूषण ग्रंथ के निम्न दोहे के अनुसार 'भूषण' उनकी उपाधि है, जो उन्हें चित्रकूट के राजा हृदयराम के पुत्र रुद्रशाह ने दी थी –

कुल सुलंकि चित्रकूट-पति साहस सील-समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र॥

कहा जाता है कि भूषण कवि मतिराम और चिंतामणि के भाई थे। एक दिन भाभी के ताना देने पर उन्होंने घर छोड़ दिया और कई आश्रम में गए। यहां आश्रय प्राप्त करने के बाद शिवाजी के आश्रम में चले गए और अंत तक वहीं रहे।

पन्ना नरेश छत्रसाल से भी भूषण का संबंध रहा। वास्तव में भूषण केवल शिवाजी और छत्रसाल इन दो राजाओं के ही सच्चे प्रशंसक थे। उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है–

और राव राजा एक मन में न ल्याऊं अब।
साहू को सराहों कै सराहौं छत्रसाल को॥

संवत 1772 तदनुसार ईस्वी 1715 में भूषण परलोकवासी हो गए।

रचनाएँ

विद्वानों ने इनके छह ग्रंथ माने हैं – शिवराजभूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक, भूषण उल्लास, भूषण हजारा, दूषनोल्लासा। परन्तु इनमें शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक व शिवा बावनी ही उपलब्ध हैं। शिवराजभूषण में अलंकार, छत्रसाल दशक में छत्रसाल बुंदेला के पराक्रम, दानशीलता व शिवाबवनी में शिवाजी के गुणों का वर्णन किया गया है।

शिवराज भूषण एक विशालकाय ग्रन्थ है जिसमें 385 पद्य हैं। शिवा बावनी में 52 कवितों में शिवाजी के शौर्य, पराक्रम आदि का ओजपूर्ण वर्णन है। छत्रशाल दशक में केवल दस कवितों के अन्दर बुन्देला वीर छत्रसाल के शौर्य का वर्णन किया गया है। इनकी सम्पूर्ण कविता वीर रस और ओज गुण से ओतप्रोत है जिसके नायक शिवाजी हैं और खलनायक औरंगजेब। औरंगजेब के प्रति उनका जातीय वैमनस्य न होकर शासक के रूप में उसकी अनीतियों के विरुद्ध है।

शिवराज भूषण से कुछ छन्द

इन्द्र जिमि जंभ पर, वाडव सुअंभ पर।
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज है ।1।
पौन बरिबाह पर, संभु रतिनाह पर।
ज्यों सहसबाह पर, राम द्विजराज है ।2।
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुंड पर।
भूषण वितुण्ड पर, जैसे मृगराज है ।3।
तेजतम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर।
त्यों म्लेच्छ बंस पर, शेर सिवराज है ।4।
ऊंचे घोर मंदिर के अन्दर रहन बारी ।।5।।
शिवा जो न होत तो सुनत हो सबकी ।।6।

काव्यगत विशेषताएँ

रीति युग था पर भूषण ने वीर रस में कविता रची। उनके काव्य की मूल संवेदना वीर-प्रशस्ति, जातीय गौरव तथा शौर्य वर्णन है। निरीह हिन्दू जनता अत्याचारों से पीड़ित थी। भूषण ने इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई तथा निराश हिन्दू जन समुदाय को आशा का संबल प्रदान कर उसे संघर्ष के लिए उत्साहित किया। इन्होंने अपने काव्य नायक शिवाजी व छत्रसाल को चुना। शिवाजी की वीरता के विषय में भूषण लिखते हैं।

भूषण भनत महावरि बलकन लाग्यो सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमके के लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।

इन्होंने शिवाजी की युद्धवीरता, दानवीरता, दयावीरता व धर्मवीरता का वर्णन किया है। भूषण के काव्य में उत्साह व शक्ति भरी हुई है। इसमें हिंदू जनता की भावनाओं को ओजमयी भाषा में अंकन किया गया है। भूषण ने कहा कि यदि शिवाजी न होते तो सब का सुन्नत हो गया होता।

देवल गिरावते फिरावते निसान अली ऐसे डूबे राव राने सबी गये लबकी,
गौरागनपति आप औरन को देत ताप आप के मकान सब मारि गये दबकी।
पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी,
कासिहू ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी।

सांच को न मानै देवीदेवता न जानै अरु ऐसी उर आनै मैं कहत बात जबकी,
और पातसाहन के हुती चाह हिन्दुन की अकबर साहजहां कहै साखि तबकी।
बब्बर के तिब्बर हुमायूं हद्द बान्धि गये दो मैं एक करीना कुरान बेद ढबकी,
कासिहू की कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी।

कुम्भकर्न असुर औतारी अवरंगजेब कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रबकी,
खोदि डारे देवी देव सहर मोहल्ला बांके लाखन तुरुक कीन्हे छूट गई तबकी।
भूषण भनत भाग्यो कासीपति बिस्वनाथ और कौन गिनती मैं भूली गति भव की,
चारौ वर्ण धर्म छोडि कलमा नेवाज पढि सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी।

भूषण के काव्य में सर्वत्र उदारता का भाव मिलता है। वे सभी धर्मों को समान दृष्टिकोण से देखते हैं। इनके साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। इन्होंने शिवाजी को धर्मरक्षक के रूप में प्रशंसा की है तो जसवंत सिंह, करण सिंह आदि की आलोचना भी की है। भूषण ने

सारा काव्य ब्रजभाषा में रचा था। ओजगुण से परिपूर्ण ब्रजभाषा का प्रयोग सर्वप्रथम इन्होंने ही किया था। इन्होंने प्रशस्तियाँ भी लिखी है।

आज गरीब निवाज मही पर तो सो तुही सिवराज विरजै

भूषण ने मुक्तक शैली में काव्य की रचना की। इन्होंने अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। कवित्त व सवैया, छंद का प्रमुखतया प्रयोग किया है। वस्तुतः भूषण बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे कवि व आचार्य थे।

भूषण वीर रस के श्रेष्ठ कवि हैं

भूषण का वीरकाव्य हिन्दी साहित्य की वीर काव्य परंपरा में लिखा गया है। इनकी कविता का अंगीरस वीर रस है। इनकी रचनाएँ शिवराज भूषण, शिवाबावजी और छत्रसाल दशक वीर रस से ओतप्रोत है। ये तीनों कृतियाँ भूषण की वीर भावना की सच्ची निर्देशक है। यह काव्य अपने युग के आदर्श नायकों के चरित्र को प्रस्तुत करने वाला है। इनमें शिवाजी और छत्रसाल के शौर्य-साहस, प्रभाव व पराक्रम, तेज व ओज का जीवंत वर्णन हुआ है। भूषण के वीरकाव्य की मुख्य विशेषता यह है कि उसमें कल्पना और पुराण की तुलना में इतिहास की सहायता अधिक ली गई है। काव्य का आधार ऐतिहासिक है। इसके अतिरिक्त, इस वीरकाव्य में देश की संस्कृति व गौरव का गान है। भूषण ने अपने वीरकाव्य में औरंगजेब के प्रति आक्रोश सर्वत्र व्यक्त किया है।

भूषण की वीरभावना का वर्णन बहुआयामी है। इसे हम युद्धमूलक, धर्ममूलक, दानमूलक, स्तुतिमूलक आदि रूपों में देख सकते हैं।

युद्धमूलक

वीर रस के स्थायी भाव उत्साह का उत्कृष्ट रूप युद्धभूमि में शत्रु को ललकारते हुए उजागर होता हैं शिवाजी स्वयं वीर थे और उनकी प्रेरणा से हिन्दू सैनिकों के मन में वीरता का भाव उत्पन्न हुआ था। भूषण ने उन सैनिकों की वीरता का वर्णन करते हुए कहा है:

घूटत कमान अरू तीर गोली बानन के मुसकिल होति मुरचान हू की ओट में।

ताहि समै सिवराज हुकम के हल्ल कियो दावा बांधि पर हल्ला वीर भट जोट में।

युद्धों का सजीव चित्रण

भूषण का युद्ध वर्णन बड़ा ही सजीव और स्वाभाविक है। युद्ध के उत्साह से युक्त सेनाओं का रण प्रस्थान युद्ध के बाजों का घोर गर्जन, रण भूमि में हथियारों का घात-प्रतिघात, शूर वीरों का पराक्रम और कायरों की भयपूर्ण स्थिति आदि दृश्यों का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। शिवाजी की सेना का रण के लिए प्रस्थान करते समय का एक चित्र देखिए -

साजि चतुरंग बीररंग में तुरंग चढ़ि़।
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद विहद नगारन के।
नदी नद मद गैबरन के रलत हैं।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गाजन की ठेल-पेल सैल उसलत हैं।
तारा सों तरनि घूरि धरा में लगत जिम,
धारा पर पारा पारावार ज्यों हलत हैं।-- (शिवा बावनी)

धर्ममूलक

कवि ने शिवाजी को धर्म व संस्कृति के उन्नायक के रूप में अंकित किया है। शिवाजी ने मुसलमानों से टक्कर ली तथा हिंदुओं की रक्षा की। उन्होंने शिवराज और क्षत्रशाल की महिमा का वर्णन किया है

कवि ने शिवाबावनी में कहा है –
वेद राखे विदित पुराने राखे सारयुत,
राम नाम राख्यों अति रसना सुधार मैं,
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं।

दानमूलक

वीर रस के कवियों ने अपने नायक को अत्यधिक दानवीर दिखलाया है। भूषण ने शिवाजी की दानवीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया है। याचक को अपनी इच्छा से ज्यादा दान मिलता है। शिवास्तुति में कवि ने शिवाजी की अपूर्व दानशीलता का वर्णन किया है।

जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु,
महादानि साहितनै गरिब नेवाज के।
भूषण जवाहिर जलूस जरबाक जोति,
देखि-देखि सरजा की सुकवि समाज के।

दयामूलक

भूषण के अनुसार, शिवाजी दया के सागर थं। वे शरणागत पर दया करते थे। उन्होंने अपने सैनिकों को स्त्रियों व बच्चों को तंग न करने का निर्देश दिया था। वस्तुतः भूषण ने शिवाजी के पराक्रम, शौर्य व आतंक का प्रभावशाली वर्णन किया है। उन्होंने शिवाजी के धर्मरक्षक, दानवीर व दयावान, रूप को प्रकट किया है। इनके वीररस से संबंधित पद मुक्तक हैं। इनमें ओजगुण का निर्वाह है। हिन्दी के अन्य वीर रस के कवि शृंगार का वर्णन भी साथ में करते हैं। जबकि भूषण का काव्य शृंगार भावना से बचा हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि भूषण वीररस के श्रेष्ठ कवि हैं।

भाषा

भूषण ने अपने काव्य की रचना ब्रज भाषा में की। वे सर्वप्रथम कवि हैं जिन्होंने ब्रज भाषा को वीर रस की कविता के लिए अपनाया। वीर रस के अनुकूल उनकी ब्रज भाषा में सर्वत्र ही आज के दर्शन होते हैं।

भूषण की ब्रज भाषा में उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों की भरमार है। जंग, आफताब, फौज आदि शब्दों का खुल कर प्रयोग हुआ है। शब्दों का चयन वीर रस के अनुकूल है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग सुंदरता से हुआ है।

व्याकरण की अव्यवस्था, शब्दों को तोड़-मरोड़, वाक्य विन्यास की गड़बड़ी आदि के होते हुए भी भूषण की भाषा बड़ी सशक्त और प्रवाहमयी है। हां, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द प्रयुक्त होने से वह कुछ क्लिष्ट अवश्य हो गई है।

शैली

भूषण की शैली अपने विषय के अनुकूल है। वह ओजपूर्ण है और वीर रस की व्यंजना के लिए सर्वथा उपयुक्त है। अतः उनकी शैली को वीर रस की

ओज पूर्ण शैली कहा जा सकता है। प्रभावोत्पादकता, चित्रोपमता और सरसता भूषण की शैली की मुख्य विशेषताएं हैं।

रस वीर रस के वर्णन में भूषण हिंदी साहित्य में अद्वितीय कवि हैं। वीर के साथ रौद्र भयानक-वीभत्स आदि रसों को भी स्थान मिला है। भूषण नेश्रृंगार रस की भी कुछ कविताएं लिखी हैं, किंतुश्रृंगार रस के वर्णन ने भी उनकी वीर रस की एवं रुचि का स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है -

'न करु निरादर पिया सौ मिल सादर ये
आए वीर बादर बहादुर मदन के

छंद

भूषण की छंद योजना रस के अनुकूल है। दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि उनके प्रमुख छंद हैं।

अलंकार

रीति कालीन कवियों की भांति भूषण ने अलंकारों को अत्यधिक महत्व दिया है। उनकी कविता में प्राय: सभी अलंकार पाए जाते हैं। अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों को प्रधानता मिली है। यमक अलंकार का एक उदाहरण देखिए-

ऊंचे घोर मंदर के अंदर रहन वारी,
ऊंचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करें कंद मूल भोग करें
तीन बेर खातीं, ते वे तीन बेर खाती हैं।
भूषन शिथिल अंग भूषन शिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रस,
नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं।

अर्थ -

1. ऊंचे घोर मंदर-ऊंचे विशाल घर-महल/ऊंचे विशाल पहाड़
2. कंद मूल-राजघराने में खाने के प्रयोग में लाये जाने वाले जायकेदार कंद-मूल वगैरह/जंगल में कंद की मूल यानि जड़

3. तीन बेर खातीं–तीन समय खाती थीं/ मात्रा, तीन बेर फल, खाती हैं
4. भूषन शिथिल अंग–अंग भूषणों के बोझ से शिथिल हो जाते थे/भूख की वजह से उन के अंग शिथिल हो गए हैं
5. बिजन डुलातीं–जिनके इर्द गिर्द पंखे डुलाये जाते थे/वे जंगल-जंगल भटक रही हैं
6. नगन जड़ातीं–जो नगों से जड़ी हुई रहती थीं/नग्न दिखती हैं।

भूषण की राष्ट्रीय चेतना

भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक है। उनकी वाणी पीड़ित प्रजा के प्रति एक अपूर्व आश्वासन हैं। इनका समय औरंगजेब का शासन था। औरंगजेब के समय से मुगल वैभव व सत्ता की पकड़ कमजोर होती जा रही थी। औरंगजेब की कटटुरता व हिन्दुओं के प्रति नफरत ने उसे जनता से दूर कर दिया था। संकट की इस घड़ी में भूषण ने दो राष्ट्रीय पुरूषों - शिवाजी व छत्रसाल के माध्यम से पूरे राष्ट्र में राष्ट्रीय भावना संचारित करने का प्रयास किया। भूषण ने तत्कालीन जनता की वाणी को अपनी कविताओं का आधार बनाया है। इन्होंने स्वदेशानुराग, संस्कृति अनुराग, साहित्य अनुराग, महापुरुषों के प्रति अनुराग, उत्साह आदि का वर्णन किया है।

स्वदेशानुराग

भूषण का अपने देश के प्रति गहरा लगाव था। उनकी दृष्टि पूरे देश पर थी। उन्होंने देखा कि औरंगजेब देवालयों को नष्ट कर रहा है तो उनका मन विद्रोह कर उठा। शिवाजी के माध्यम से उन्होंने अपनी वाणी प्रकट की -

देवल गिरावते फिरवाते निसान अली ऐसे समय राव-राने सबै गये लबकी।

गौरा गनपति आय, औरंग की देखि ताप अपने मुकाम सब मारि गये दबकी।

संस्कृति अनुराग

भूषण ने संस्कृति का उपयोग हिंदुओं को खोया हुआ बल दिलाने के लिए किया। इन्होंने अनेक देवी-देवताओं के कार्यों का उल्लेख किया तथा उन महान् कार्यों की कोटि में शिवाजी के कार्यों की गणना की है। शिवाजी को धर्म व संस्कृति के उन्नायक रूप में अंकित किया गया है-

मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यौ कर मैं।

राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं।

साहित्य अनुराग

भूषण ने वेदशास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। इन्होंने प्राचीन साहित्य के आधार पर ही अपने काव्य की रचना की उनका साहित्य प्रेम उनकी राष्ट्रीय भावना का परिचायक है।

महापुरुषों के प्रति श्रद्धा

भूषण ने अतीत व वर्तमान के महापुरुषों व जननायकों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। इन्होंने शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला या अन्य कोई पात्र सभी का उल्लेख केवल उन्हीं प्रसंगों में किया है, जो राष्ट्रीय भावना से संबंधित थे। जैसे

रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज भूषण सकत को बरवानि यों बलन के।

उत्साह

राष्ट्रीय साहित्य में चेतना का भाव होता है। भूषण के साहित्य में सजीवता, स्फूर्ति व उमंग का भाव है। मुगलों के साथ शिवाजी के संघर्ष का कवि उत्साहपूर्ण शैली में वर्णन किया है:-

दावा पातसाहन सों किन्हों सिवराज बीर,
जेर कीन्हीं देस हृदय बांध्यो दरबारे से।
हठी मरहठी तामैं राख्यौ न मवास कोऊ,
छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से।

निस्संदेह, भूषण का काव्य राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है। वे सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय भावना के कवि हैं।

साहित्य में स्थान

भूषण का हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान हैं। वे वीर रस के अद्वितीय कवि थे। रीति कालीन कवियों में वे पहले कवि थे जिन्होंने हास-विलास की

अपेक्षा राष्ट्रीय-भावना को प्रमुखता प्रदान की। उन्होंने अपने काव्य द्वारा तत्कालीन असहाय हिंदू समाज की वीरता का पाठ पढ़ाया और उसके समक्ष रक्षा के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। वे निस्संदेह राष्ट्र की अमर धरोहर हैं।

शिवराज भूषण

शिवराज भूषण, कवि भूषण की प्रसिद्ध रचना है। इसमें कुल 385 पद्य हैं। भूषण ने अपनी इस कृति की रचना-तिथि ज्येष्ठ वदी त्रयोदशी, रविवार, संम्वत् 1730 (29 अप्रैल, 1673 ई.) को दी है। इस ग्रन्थ में उल्लिखित छत्रपति शिवाजी महाराज विषयक ऐतिहासिक घटनाएँ 1673 ई. तक घटित हो चुकी थीं। इससे भी इस ग्रन्थ का उक्त रचनाकाल ठीक ठहरता है तथा साथ में शिवाजी और भूषण की समसामयिकता भी सिद्ध हो जाती है। 'शिवराज-भूषण' में 385 छन्द हैं। रीतिकाल के कवि होने के कारण भूषण ने अपना प्रधान ग्रंथ 'शिवराजभूषण' अलंकार के ग्रंथ के रूप में बनाया। दोहों में अलंकारों की परिभाषा दी गयी है तथा कवित्त एवं सवैया छन्दों में उदाहरण दिये गये हैं, जिनमें शिवाजी के कार्यकलापों का वर्णन किया गया है।

शिवराज भूषण की एक बानगी देखिये-

अथ उपमेय उपमालंकार-वर्णनम

जहाँ परस्पर होत है उपमेयो उपमान।

भूषन उपमेयोपमा ताहि बखानत जान 47

तेरौ तेज सरजा समथ्थ दिनकर सो है तेरे तेज के निकर सौ।

भ्वैसिला भुवाल तेरौ जस हिमकर सो है हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सौ।

भूषन भनत तेरौ हियौ रतनाकर सौ रतनाकर है तेरे हिय सुखकर सौ।

साहि के सपूत सिव साहि दानी तेरौ कर सुरतरु सो है सुरतरु तेरे कर सौ

जहाँ एक उपमेय कौं होत बहुत उपमान।

ताहि कहत मालोपमा भूषन सकल सुजान

इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।

पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।

दावा द्रुमदंड पर चीता मृगझुंड पर भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज हैं।

तेज तम अंस पर कान्ह जिम कंस पर यौं मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज हैं।

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी-सी रहति छाती,
बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिंदुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब,
मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की।
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धाक धाक,
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की।
मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस,
खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की।
सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि उर,
कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे ।
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भयो,
स्याह मुख नौरँग, सिपाह मुख पियरे।
दारा की न दौर यह, रार नहीं खजुबे की,
बाँधिबो नहीं है कैधौं मीर सहवाल को।
मठ विस्वनाथ को, न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा, न मंदिर गोपाल को।
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें,
ठौर ठौर हासिल उगाहत हैं साल को।
बूड़ति है दिल्ली सो सँभारै क्यों न दिल्लीपति,
धाक्का आनि लाग्यौ सिवराज महाकाल को ।
चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार,
दिल्ली दहसति चितै चाहि करषति है।
बिलखि बदन बिलखत बिजैपुर पति,
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है ।
थर थर काँपत कुतुब साहि गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,

केते बादसाहन की छाती धारकति है ।
जिहि फन फूतकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
विषजाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो ।
कीन्हो जिहि पान पयपान सो जहान कुल,
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग मुगलद्दल निगल

शिवा बावनी

शिवा बावनी भूषण द्वारा रचित बावन (52) छन्दों का काव्य है जिसमें छत्रपति शिवाजी महाराज के शौर्य, पराक्रम आदि का ओजपूर्ण वर्णन है। इसमें इस बात का वर्णन है कि किस प्रकार उन्होंने हिन्दू धर्म और राष्ट्र की रक्षा की।

शिवा बावनी की कुछ कविताएँ–
साजि चतुरंग बीररंग में तुरंग चढ़ि।
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद विहद नगारन के।
नदी नद मद गैबरन के रलत हैं।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गाजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।
तारा सों तरनि घूरि धरा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।
पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई, रही बात रब की।
कासी हूँ की कला गई मथुरा मसीत भई
शिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी।
कुम्करण असुर अवतारी औरंगजेब,
कशी प्रयाग में दुहाई फेरी रब की।
तोड़ डाले देवी देव शहर मुहल्लों के,
लाखो मुसलमाँ किये माला तोड़ी सब की।

भूषण भणत भाग्यो काशीपति विश्वनाथ
और कौन गिनती में भुई गीत भव की।
काशी कर्बला होती मथुरा मदीना होती
शिवाजी न होते तो सुन्नत होती सब की ।
बाने फहराने घहराने घण्टा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के।
नग भहराने ग्रामनगर पराने सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के ।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारे हुते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिगराने फन सेस के ।

सेनापति (कवि)

सेनापति भक्ति काल एवं रीति काल के सन्धियुग के कवि हैं। इनकी रचनाओं में हिन्दी साहित्य की दोनों धाराओं का प्रभाव पड़ा है जिनमें भक्ति और श्रृंगार दोनों का मिश्रण है। इनके ऋतु वर्णन में सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण पाया जाता है, जो साहित्य में अद्वितीय है। अन्य प्राचीन कवियों की भाँति सेनापति का जीवनवृत संदिग्ध है इनकी जानकारी भी कम प्राप्त है। कवित्त रत्नाकर के छन्द के आधार पर इतना ही ज्ञात है कि ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा इनके पिता का नाम गंगाधर तथा पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था। इनके एक पद 'गंगा तीर वसति अनूप जिन पाई है के अनुसार ये बुलंदशहर जिले के अनूप शहर के माने जाते हैं। सेनापति मुसलमानी दरबारों में भी रह चुके थे। सेनापति के दो मुख्य ग्रंथ हैं- 'काव्य-कल्पद्रुम तथा 'कवित्त-रत्नाकर। जिसकी उपमाएँ अनूठी हैं।

सेनापति राम के विशेष भक्त थे। शिव तथा कृष्ण विषयक कविता लिखते हुए भी रूचि राम की ओर अधिक थी। उत्तर प्रदेश के अनूप शहर के रहने वाले थे परन्तु बाद के दिनों में वे वृन्दावन में क्षेत्र संन्यास लेकर वहीं सारा जीवन व्यतीत किए। सेनापति के काव्य में रीतिकालीन काव्य-परम्परा की झलक अधिकांश छन्दों में स्पष्ट रूप से विद्यमान है। चमत्कार प्रियता नायिका भेद के उदाहरण भी उनकी कृतियों में उपलब्ध है।

परिचय

सेनापति ब्रजभाषा काव्य के एक अत्यंत शक्तिमान कवि माने जाते हैं। इनका समय रीति युग का प्रारंभिक काल है। उनका परिचय देने वाला स्रोत केवल उनके द्वारा रचित और एकमात्रा उपलब्ध ग्रंथ 'कवित्त रत्नाकर' है।

इसके आधार पर इनके पितामह का नाम परशुराम दीक्षित, पिता का नाम गंगाधर दीक्षित और गुरु का नाम हीरामणि दीक्षित था। 'गंगातीर बसति अनूप जिनि पाई है' से इनका अनूपशहर निवासी होना कुछ लोग स्वीकार करते हैं, परंतु कुछ लोग अनूप का अर्थ अनुपम बस्ती लगाते हैं और तर्क यह देते हैं कि यह नगर राजा अनूपसिंह बडगूजर से संबंध रखता है जिन्होंने एक चीते को मारकर जहाँगीर की रक्षा की थी और उससे यह स्थान पुरस्कार स्वरूप प्राप्त किया था और इस प्रकार उसने अनूपशहर बसाया। अनूप सिंह की पाँच पीढ़ी बाद उनकी संपत्ति उनके वंशजों में विभक्त हुई और किन्हीं तारा सिंह को अनूप शहर बँटवारे में मिला। ऐसी दशा में सेनापति के पिता को अनूपशहर कैसे मिल सकता था। परंतु, यह तर्क विषय संबद्ध नहीं है। अनूप बस्ती पाने का तात्पर्य उस बस्ती के अधिकार से नहीं, बल्कि अपने निवास के लिए सुंदर भूमि प्राप्त करने से है। ऐसी दशा में अनूपशहर से ऐसा तात्पर्य लेने में कोई असंभवता नहीं है।

सेनापति के उपर्युक्त परिचय तथा उनके काव्य की प्रवृत्ति देखने से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे और अपनी विद्वता और भाषाधिकार पर उन्हें गर्व भी था। अतः उनका संबंध किसी संस्कृत-ज्ञान-संपन्न वंश या परिवार से होना चाहिए। अभी हाल में प्रकाशित कवि कलानिधि देवर्षि श्रीकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित, 'ईश्वर विलास' और 'पद्ममुक्तावली' नामक ग्रंथों में एक तैलंग ब्राह्मण वंश का परिचय मिलता है, जो तेलंगाना प्रदेश से उत्तर की ओर आकर काशी में बसा। काशी से प्रयास, प्रयाग से बांधव देश (रीवाँ) और वहाँ से अनूपनगर, भरतपुर, बूँदी और जयपुर स्थानों में जा बसा।

इसी वंश के प्रसिद्ध कवि श्रीकृष्ण भट्ट देवर्षि ने संस्कृत के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी 'अलंकार कलानिधि', 'शृंगार-रस-माधुरी', 'विदग्ध रसमाधुरी', जैसे सुंदर ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों में इनका ब्रजभाषा पर अपूर्व अधिकार प्रकट होता है। ऐसी दशा में ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि इसी देवर्षि भट्ट दीक्षितों की अनूपशहर में बसी शाखा से या तो स्वयं सेनापति का या उनके गुरु हीरामणि का संबंध रहा होगा। सेनापति और श्रीकृष्ण भट्ट की शैली को देखने पर भी एक-दूसरे पर पड़े प्रभाव की संभावना स्पष्ट होती है।

सेनापति का काव्य विदग्ध काव्य है। इनके द्वारा रचित दो ग्रंथों का उल्लेख मिलता है – एक 'काव्यकल्पद्रुम' और दूसरा 'कवित्त रत्नाकर'। परंतु, 'कवित्त रत्नाकर' परंतु, 'काव्यकल्पद्रुम' अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। 'कवित्तरत्नाकर' संवत 1706 में लिखा गया और यह एक प्रौढ़ काव्य है। यह पाँच तरंगों में विभाजित है। प्रथम तरंग में 97 कवित्त हैं, द्वितीय में 74, तृतीय में 62 और 8 कुंडलिया, चतुर्थ में 76 और पंचम में 88 छंद हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर इस ग्रंथ में 405 छंद हैं। इसमें अधिकांश लालित्य लेषयुक्त छंदों का है परंतुशृंगार, षट्ऋतु वर्णन और रामकथा के छंद अत्युत्कृष्ट हैं। सेनापति का काव्य अपने सुंदर यथातथ्य और मनोरम कल्पनापूर्ण षट्ऋतु वर्णन के लिए प्रसिद्ध है। भाव एवं कल्पना चमत्कार के साथ-साथ वास्तविकता का चित्रण सेनापति की विशेषता है। सबसे प्रधान तत्त्व सेनापति की भाषा शैली का है जिसमें शब्दावली अत्यंत, संयत, भावोपयुक्त, गतिमय एवं अर्थगर्भ है।

सेनापति की भाषा शैली को देखकर ही उनके छंद बिना उनकी छाप के ही पहचाने जा सकते हैं। सेनापति की कविता में उनकी प्रतिभा फूटी पड़ती है। उनकी विलक्षण सूझ छंदों में उक्ति वैचित्रय का रूप धारण कर प्रकट हुई है जिससे वे मन और बुद्धि को एक साथ चमत्कृत करने वाले बन गए हैं। (उनके छंद एक कुशल सेनापति के दक्ष सैनिकों की भाँति पुकारकर कहते हैं 'हम सेनापति के हैं'।)

6

रीति काल

बिहारी लाल

बिहारी लाल का नाम हिन्दी साहित्य के रीति काल के कवियों में महत्त्वपूर्ण है। महाकवि बिहारीलाल का जन्म 1595 के लगभग ग्वालियर में हुआ। वे जाति के माथुर चौबे थे। उनके पिता का नाम केशवराय था। उनका बचपन बुंदेलखंड में कटा और युवावस्था ससुराल मथुरा में व्यतीत हुई, जैसे की निम्न दोहे से प्रकट है –

जनम ग्वालियर जानिये खंड बुंदेले बाल।
तरुनाई आई सुघर मथुरा बसि ससुराल॥

जीवन परिचय

जयपुर-नरेश मिर्जा राजा जयसिंह अपनी नयी रानी के प्रेम में इतने डूबे रहते थे कि वे महल से बाहर भी नहीं निकलते थे और राज-काज की ओर कोई ध्यान नहीं देते थे। मन्त्री आदि लोग इससे बड़े चिंतित थे, किंतु राजा से कुछ कहने को शक्ति किसी में न थी। बिहारीलाल ने यह कार्य अपने ऊपर लिया। उन्होंने निम्नलिखित दोहा किसी प्रकार राजा के पास पहुंचाया-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सौं बिंध्यों, आगे कौन हवाल।।

इस दोहे ने राजा पर मन्त्र जैसा कार्य किया। वे रानी के प्रेम-पाश से मुक्त होकर पुनः अपना राज-काज संभालने लगे। वे बिहारीलाल की काव्य कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बिहारीलाल से और भी दोहे रचने के लिए कहा और प्रति दोहे पर एक अशर्फी देने का वचन दिया। बिहारीलाल जयपुर नरेश के दरबार में रहकर काव्य-रचना करने लगे, वहां उन्हें पर्याप्त धन और यश मिला।

सन रचनाएँ 1663 में उनकी मृत्यु हो गई।

बिहारीलाल की एकमात्रा रचना 'बिहारी सतसई' है। यह मुक्तक काव्य है। इसमें 719 दोहे संकलित हैं। 'बिहारी सतसई'श्रृंगार रस की अत्यंत प्रसिद्ध और अनूठी कृति है। इसका एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक अनमोल रत्न माना जाता है। बिहारीलाल की कविता का मुख्य विषयश्रृंगार है। उन्होंनेश्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का वर्णन किया है। संयोग पक्ष में बिहारीलाल ने हाव-भाव और अनुभवों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया हैं। उसमें बड़ी मार्मिकता है। संयोग का एक उदाहरण देखिए-

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे, भौंहनु हंसे दैन कहे, नटि जाय॥

बिहारीलाल का वियोग, वर्णन बड़ा अतिशयोक्ति पूर्ण है। यही कारण है कि उसमें स्वाभाविकता नहीं है, विरह में व्याकुल नायिका की दुर्बलता का चित्रण करते हुए उसे घड़ी के पेंडुलम जैसा बना दिया गया है-

इति आवत चली जात उत, चली, छःसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ॥

सूफी कवियों की अहात्मक पद्धति का भी बिहारीलाल पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वियोग की आग से नायिका का शरीर इतना गर्म है कि उस पर डाला गया गुलाब जल बीच में ही सूख जाता है-

औंधाई सीसी सुलखि, बिरह विथा विलसात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छीटों छुयो न गात॥

बिहारीलाल चौबे या बिहारी हिंदी के रीति काल के प्रसिद्ध कवि थे।

सतसई को तीन मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं- नीति विषयक, भक्ति और अध्यात्म भावपरक, तथाश्रृंगारपरक। इनमें सेश्रृंगारात्मक भाग अधिक है। कला-चमत्कार सर्वत्र चातुर्य के साथ प्राप्त होता है।

श्रृंगारात्मक भाग में रूपांग सौंदर्य, सौंदर्योपकरण, नायक-नायिकाभेद तथा हाव, भाव, विलास का कथन किया गया है। नायक-नायिका निरूपण भी मुख्तः

तीन रूपों में मिलता है- प्रथम रूप में नायक कृष्ण और नायिका राधा है। इनका चित्रण करते हुए धार्मिक और दार्शनिक विचार को ध्यान में रखा गया है। इसलिए इसमें गूढ़ार्थ व्यंजना प्रधान है, और आध्यात्मिक रहस्य तथा धर्म-मर्म निहित है, द्वितीय रूप में राधा और कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया किंतु उनके आभास की प्रदीप्ति दी गई है और कल्पनादर्श रूप रौचिर्य रचकर आदर्श चित्र विचित्र व्यंजना के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। इससे इसमें लौकिक वासना का विलास नहीं मिलता। तृतीय रूप में लोकसंभव नायक नायिका का स्पष्ट चित्र है। इसमें भी कल्पना कला कौशल और कवि परंपरागत आदर्शों का पुट पूर्ण रूप में प्राप्त होता है। नितांत लौकिक रूप बहुत ही न्यून और बहुत ही कम है।

'सतसई' के मुक्तक दोहों को क्रमबद्ध करने के प्रयास किए गए हैं। 25 प्रकार के क्रम कहे जाते हैं जिनमें से 14 प्रकार के क्रम देखे गए हैं, शेष 11 प्रकार के क्रम जिन टीकाओं में हैं, वे प्राप्त नहीं। किंतु कोई निश्चित क्रम नहीं दिया जा सका। वस्तुतः बात यह जान पड़ती है कि ये दोहे समय-समय पर मुक्तक रूप में ही रचे गए, फिर चुन चुनकर एकत्रित कर संकलित कर दिए गए। केवल मंगलाचरणात्मक दोहों के विषय में भी इसी से विचार वैचित्य है। यदि 'मेरी भव बाधा हरौ' इस दोहे को प्रथम मंगलाचरणात्मक अर्थात् केवल राधोपासक होने का विचार स्पष्ट होता है और यदि 'मोर मुकुट कटि काछिनि'-इस दोहे को लें, तो केवल एक विशेष बानकवाली कृष्णमूर्ति ही बिहारी की अभीष्टोपास्य मूर्ति मुख्य ठहरती हैं - बिहारी वस्तुतः कृष्णोपासक थे, यह स्पष्ट है।

सतसई के देखने से स्पष्ट होता है कि बिहारी के लिए काव्य में रस और अलंकार चातुर्य चमत्कार तथा कथन कौशल दोनों ही अनिवार्य और आवश्यक हैं। उनके दोहों को दो वर्गों में इस प्रकार भी रख सकते हैं, एक वर्ग में वे दोहे आएँगें जिनमें रस रौचिर्य का प्राबल्य है और रसात्मकता का ही विशेष ध्यान रखा गया है। अलंकार चमत्कार इनमें भी है किंतु विशेष प्रधान नहीं, वरन् रस परिपोषकता और भावोत्कर्षकता के लिए ही सहायक रूप में यह है।

दूसरे वर्ग में वे दोहे हैं जिनमें रसात्मकता को विशेषता नहीं दी गई वरन् अलंकार चमत्कार और वचनचातुरी अथवा कथन-कलाकौशल को ही प्रधानता दी गई है। किसी विशेष अलंकार को उक्तिवैचित्र्य के साथ सफलता से निबाहा गया है। इस प्रकार देखते हुए भी यह मानना पड़ता है कि अलंकार चमत्कार को

कहीं नितांत भुलाया भी नहीं गया। रस को उत्कर्ष देते हुए भी अलंकार कौशल का अपकर्ष भी नहीं होने दिया गया। इस प्रकार कहना चाहिए कि बिहारी रसालंकारसिद्ध कवि थेय रससिद्ध ही नहीं।

नीति विषयक दोहों में वस्तुतः सरसता रखना कठिन होता है, उनमें उक्तिऔचित्य और वचनवक्रता के साथ चारु चातुर्य चमत्कार ही प्रभावोत्पादक और ध्यानाकर्षण में सहायक होता है। यह बात नीतिपरक दोहों में स्पष्ट रूप से मिलती है। फिर भी बिहारी ने इनमें सरसता का सराहनीय प्रयास किया है।

ऐसी ही बात दार्शनिक सिद्धांतों और धार्मिक भाव मर्मों के भी प्रस्तुत करने में आती है क्योंकि उनमें अपनी विरसता स्वभावतः रहती है। फिर भी बिहारी ने उन्हें सरसता के साथ प्रस्तुत करने में सफलता पाई है।

भक्ति के हार्दिक भाव बहुत ही कम दोहों में दिखाई पड़ते हैं। समयावस्था विशेष में बिहारी के भावुक हृदय में भक्तिभावना का उदय हुआ और उसकी अभिव्यक्ति भी हुई। बिहारी में दैन्य भाव का प्राधान्य नहीं, वे प्रभु प्रार्थना करते हैं, किंतु अति हीन होकर नहीं। प्रभु की इच्छा को ही मुख्य मानकर विनय करते हैं।

बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती सिद्ध कविवरों की मुक्तक रचनाओं, जैसे आर्यासप्तशती, गाथासप्तशती, अमरुकशतक आदि से मूलभाव लिए हैं- कहीं उन भावों को काट छाँटकर सुंदर रूप दिया है, कहीं कुछ उन्नत किया है और कहीं ज्यों का त्यों ही सा रखा है। सौंदर्य यह है कि दीर्घ भावों को संक्षिप्त रूप में रम्यता के साथ अपनी छाप छोड़ते हुए रखने का सफल प्रयास किया गया है।

टीकाएँ

'सतसई' पर अनेक कवियों और लेखकों ने टीकाएँ लिखीं। कुल 54 टीकाएँ मुख्य रूप से प्राप्त हुई हैं। रत्नाकर जी की बिहारी रत्नाकर नामक एक अंतिम टीका है, यह सर्वांग सुंदर है। सतसई के अनुवाद भी संस्कृत, उर्दू (फारसी) आदि में हुए हैं और कतिपय कवियों ने सतसई के दोहों को स्पष्ट करते हुए कुंडलिया आदि छंदों के द्वारा विशिष्टीकृत किया है। अन्य पूर्वापरवर्ती कवियों के साथ भावसाम्य भी प्रकट किया गया है। कुछ टीकाएँ फारसी और संस्कृत में लिखी गई हैं। टीकाकारों ने सतसई में दोहों के क्रम भी अपने अपने विचार से रखे हैं। साथ ही दोहों की संख्या भी न्यूनाधिक दी है। यह नितांत

निश्चित नहीं कि कुल कितने दोहे रचे गए थे। संभव है, जो सतसई में आए वे चुनकर आए कुल दोहे 700 से कहीं अधिक रचे गए होंगे। सारे जीवन में बिहारी ने इतने ही दोहे रचे हों, यह सर्वथा मान्य नहीं ठहरता।

'सतसई' पर कतिपय आलोचकों ने अपनी आलोचनाएँ लिखी हैं। रीति काव्य से ही इसकी आलोचना चलती आ रही है। प्रथम कवियों ने सतसई की मार्मिक विशेषता को सांकेतिक रूप से सूचित करते हुए दोहे और छंद लिखे। उर्दू के शायरों ने भी इसी प्रकार किया। यथा –

सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत मैं छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।

बिहारी की बलागत और ब्रजभाषा की शीरीनी हमें तारीफ करने के लिए मजबूर करती है।

इस प्रकार की कितनी ही उक्तियाँ प्रचलित हैं। विस्तृत रूप में सतसई पर आलोचनात्मक पुस्तकें भी इधर कई लिखी गई हैं। साथ ही आधुनिक काल में इसकी कई टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इनकी तुलना विशेष रूप से कविवर देव से की गई और एक ओर देव को, दूसरी ओर बिहारी को बढ़कर सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया। दो पुस्तकें, 'देव और बिहारी' पं. कृष्णबिहारी मिश्र लिखित तथा 'बिहारी और देव' लाला भगवानदीन लिखित उल्लेखनीय हैं। रत्नाकर जी के द्वारा संपादित 'बिहारी रत्नाकर' नामक टीका और 'कविवर बिहारी' नामक आलोचनात्मक विवेचन विशेष रूप में अवलोकनीय और प्रामाणिक हैं।

काव्यगत विशेषताएँ

बिहारी की कविता का मुख्य विषयशृंगार है। उन्होंनेशृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का वर्णन किया है। संयोग पक्ष में बिहारी ने हावभाव और अनुभवों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया है। उसमें बड़ी मार्मिकता है। संयोग का एक उदाहरण देखिए –

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सोह करे, भौंहनु हंसे दैन कहे, नटि जाय।

बिहारी का वियोग वर्णन बड़ा अतिशयोक्ति पूर्ण है। यही कारण है कि उसमें स्वाभाविकता नहीं है, विरह में व्याकुल नायिका की दुर्बलता का चित्रण करते हुए उसे घड़ी के पेंडुलम जैसा बना दिया गया है –

इति आवत चली जात उत, चली, छसातक हाथ।
चढी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ।

सूफी कवियों की अहात्मक पद्धति का भी बिहारी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वियोग की आग से नायिका का शरीर इतना गर्म है कि उस पर डाला गया गुलाब जल बीच में ही सूख जाता है –

औंधाई सीसी सुलखि, बिरह विथा विलसात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छीटों छुयो न गात।

भक्ति-भावना

बिहारी मूलत: श्रृंगारी कवि हैं। उनकी भक्ति-भावना राधा-कृष्ण के प्रति है और वह जहां तहां ही प्रकट हुई है। सतसई के आरंभ में मंगला-चरण का यह दोहा राधा के प्रति उनके भक्ति-भाव का ही परिचायक है –

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाई परे, स्याम हरित दुति होय।

बिहारी ने नीति और ज्ञान के भी दोहे लिखे हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। धन-संग्रह के संबंध में एक दोहा देखिए –

मति न नीति गलीत यह, जो धन धरिये जोर।
खाये खर्चे जो बचे तो जोरिये करोर।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-चित्रण में बिहारी किसी से पीछे नहीं रहे हैं। षट ऋतुओं का उन्होंने बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है। ग्रीष्म ऋतु का चित्र देखिए –

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोतन से कियो, दरिघ दाघ निदाघ की

बिहरी गाँव वालो की आसक्तिं का उपहास करते हुए कहते हैं–

कर फुलेल को आचमन मिथो कहत सरहि।
रे गन्ध मतिहीन इत्र दिखवत काहि।

बहुज्ञता

बिहारी को ज्योतिष, वैद्यक, गणित, विज्ञान आदि विविध विषयों का बड़ा ज्ञान था। अत: उन्होंने अपने दोहों में उसका खूब उपयोग किया है। गणित संबंधी तथ्य से परिपूर्ण यह दोहा देखिए –

कहत सवै वेदीं दिये आंगु दस गुनो होतु।
तिय लिलार बेंदी दियैं अगिनतु बढत उदोतु।

भाषा

बिहारी की भाषा साहित्यिक ब्रज भाषा है। इसमें सूर की चलती ब्रज भाषा का विकसित रूप मिलता है। पूर्वी हिंदी, बुंदेलखंडी, उर्दू, फारसी आदि के शब्द भी उसमें आए हैं, किंतु वे लटकते नहीं हैं। बिहारी का शब्द चयन बड़ा सुंदर और सार्थक है। शब्दों का प्रयोग भावों के अनुकूल ही हुआ है और उनमें एक भी शब्द भारती का प्रतीत नहीं होता। बिहारी ने अपनी भाषा में कहीं-कहीं मुहावरों का भी सुंदर प्रयोग किया है। जैसे -

मूड चढाऐऊ रहै फरयौ पीठि कच-भारु।
रहै गिरैं परि, राखिबौ तऊ हियैं पर हारु।

शैली

विषय के अनुसार बिहारी की शैली तीन प्रकार की है

1. माधुर्य पूर्ण व्यंजना प्रधानशैली -शृंगार के दोहों में।
2. प्रसादगुण से युक्त सरस शैली - भक्ति तथा नीति के दोहों में।
3. चमत्कार पूर्ण शैली - दर्शन, ज्योतिष, गणित आदि विषयक दोहों में।

रस

बिहारी के काव्य में शांत, हास्य, करुण आदि रसों के भी उदाहरण मिल जाते हैं, किंतु मुख्य रसशृंगार ही है।

छंद

बिहारी ने केवल दो ही छंद अपनाए हैं, दोहा और सोरठा। दोहा छंद की प्रधानता है। बिहारी के दोहे समास-शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। दोहे जैसे छोटे छंद में कई-कई भाव भर देना बिहारी जैसे कवि का ही काम था।

अलंकार

अलंकारों की कारीगरी दिखाने में बिहारी बड़े पटु हैं। उनके प्रत्येक दोहे में कोई न कोई अलंकार अवश्य आ गया है। किसी-किसी दोहे में तो एक

साथ कई-कई अलंकारों को स्थान मिला है। अतिशयोक्ति, अन्योक्ति और सांगरूपक बिहारी के विशेष प्रिय अलंकार हैं अन्योक्ति अलंकार का एक उदाहरण देखिए–

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखु विहंग विचारि।
बाज पराये पानि पर तू पच्छीनु न मारि॥

एवम्

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरी सोइ।
जा तन की झाई पारे, श्यामु-हरित-दुति होइ ।

साहित्य में स्थान

किसी कवि का यश उसके द्वारा रचित ग्रंथों के परिमाण पर नहीं, गुण पर निर्भर होता है। बिहारी के साथ भी यही बात है। अकेले सतसई ग्रंथ ने उन्हें हिंदी साहित्य में अमर कर दिया।श्रृंगार रस के ग्रंथों में बिहारी सतसई के समान ख्याति किसी को नहीं मिली। इस ग्रंथ की अनेक टीकाएं हुई और अनेक कवियों ने इसके दोहों को आधार बना कर कवित्त, छप्पय, सवैया आदि छंदों की रचना की। बिहारी सतसई आज भी रसिक जनों का काव्य-हार बनी हुई है।

कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास शक्ति के कारण सतसई के दोहे गागर में सागर भरे जाने की उक्ति चरितार्थ करते हैं। उनके विषय में ठीक ही कहा गया है –

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।

अपने काव्य गुणों के कारण ही बिहारी महाकाव्य की रचना न करने पर भी महाकवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। उनके संबंध में स्वर्गीय राधाकृष्णदास जी की यह संपत्ति बड़ी सार्थक है –

यदि सूर सूर हैं, तुलसी शशी और उड़गन केशवदास हैं तो बिहारी उस पीयूष वर्षी मेघ के समान हैं जिसके उदय होते ही सबका प्रकाश आछन्न हो जाता है।